अमर वाणी

2

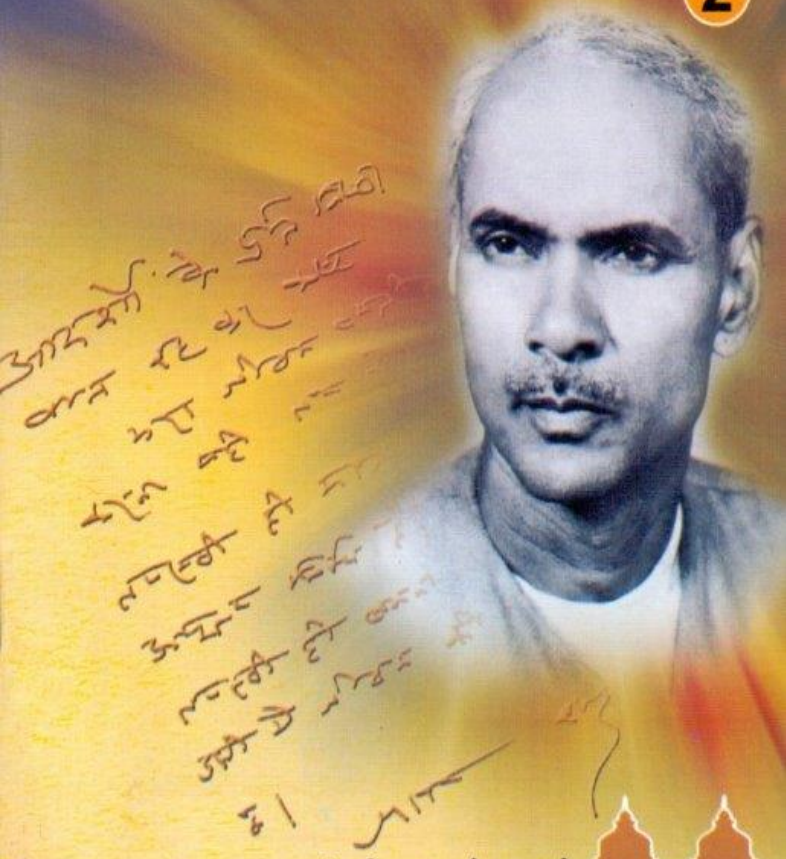

- पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

अमर वाणी

(भाग-2)

लेखक
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक
श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट (TMD)
श्रीरामपुरम्-गायत्रीनगर, शांतिकुंज, हरिद्वार
(उत्तराखण्ड) 249411

पुनरावृत्ति सन् 2014 मूल्य-12/-

इस पुस्तक को क्यों पढ़ें ?

परम पूज्य गुरुदेव की घोषणानुसार युग परिवर्तन एक सुनिश्चित संभावना है। युग निर्माण योजना इसी संभावना को साकार करने के लिए बनाई गयी है। युग परिवर्तन कैसे होगा ? कब होगा ? इसके सरंजाम कैसे जुटेंगे ? तथा इसके भागीदारों का चरित्र-चिंतन कैसा होना चाहिए ? इसका विस्तार पूर्वक वर्णन वाङ्मय के खण्ड २७ में किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तिका में 'युग परिवर्तन कैसे और कब ?' वाङ्मय क्र. २७ के चुने हुए अंशों को संकलित किया गया है। उसमें नैष्ठिक परिजनों को झकझोर देने वाली पूज्यवर की अमर-वाणी है। इसे प्रत्येक परिजन को ध्यान पूर्वक पढ़ना चाहिए तथा पढ़कर चिंतन-मनन करते हुए आचरण में उतारने का प्रयास करना चाहिए।

इस पुस्तक को पढ़ने के बाद पाठक को यह दृढ़ विश्वास हो जाएगा कि वर्तमान परिस्थितियाँ बदलेगी तथा एकता, समता, शुचिता, ममता वाला नया युग अवश्य आयेगा। यह हमारा सौभाग्य होगा कि इस महान अभियान में हमें भी भागीदार बनने का अवसर मिला है।

आशा है यह पुस्तक हम सबके भीतर प्रकाश की एक नई किरण बनकर हमारा पथ प्रदर्शन करेगी।

भविष्य इस प्रकार उभरेगा

परिवर्तन की बेला में सर्वप्रथम आबादी घटाने की आवश्यकता पड़ेगी। अन्यथा प्रगति प्रयास कितने ही बढ़े-चढ़े क्यों न हों वे आवश्यकता की तुलना में कम ही पड़ते जायेंगे। पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा में वे आपस में लड़ मर कर महाविनाश के गर्त में गिरेंगे। तरीके जो भी अपनाये जायें आबादी को नियन्त्रित किये बिना कोई गति नहीं। समस्याओं का कहीं समाधान नही। ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, संयम, बचाव आदिजिससे जो बन पड़े, उसे यह सीखना और सिखाया जाना चाहिए कि शान्ति और प्रगति का समय वापस लाने के लिए प्रजनन को जिस प्रकार भी बन पड़े निरुत्साहित किया जाना चाहिए।

अगले दिनों भीमकाय कारखाने छोटे कुटीर उद्योगों का रूप अपना कर गाँव कस्बों में बिखर जायेंगे। तभी प्रदूषण रुकेगा और तभी हर हाथ को काम और हर पेट को रोटी मिलने का सुयोग बनेगा।

हर किसी को औसत नागरिक स्तर का निर्वाह स्वीकार करना पड़ेगा। अन्यथा विलास, दर्प, अपव्यय, प्रदर्शन की अंहकारिता के लिए नीति और अनीति से बहुत जोड़ने, जमा करने और खर्चने की हविश में जिन्दगियाँ खप जायेंगी। सादा जीवन उच्च विचार का सिद्धान्त व्यवहार में उतरने पर ही यह सम्भव होगा कि ऊँचे टीले नीचे झुकें और नीचे खाई खन्दकों को भरकर समतल का सृजन करें। कृषि उद्यान और हरे मैदान और नगर, उद्योग आदि ऐसी ही भूमि की तो अपेक्षा करते हैं। अमीरों और गरीबों की बीच की दीवार टूटते-टूटते वे विसंगतियाँ भी मिटेंगी जिनके कारण जाति वंश की, लिंग भेद की, मनुष्य-मनुष्य के बीच भारी असमानता दीख पड़ रही है।

आधी आबादी नारी के रूप में मुद्दतों से क्रीत-दासी की तरह बंधुआ मजदूरों जैसा परावलम्बी जीवन जीती रही है। अगले दिनों वह पूर्ण मानवाधिकार सम्पन्न स्तर को उपलब्ध कर सकेगी। इसका शुभारंभ तो सूर्योदय के देश जापान से हो ही चुका है। एशिया, चीन, इजरायल, बलगारिया आदि में उसे पहले से ही अधिकार प्राप्त है। यदि यह हो गया तो कमाऊ हाथ दूने हो जायेंगे और किसी को किसी पर लदने और किसी को किसी का भार वहन करने की आवश्यकता न पड़ेगी। सभी एकता की स्थिति में रहते हुए स्नेह सहयोग का रसास्वदान कर सकेंगे। प्रगति भी देखते-देखते दूनी हो चलेगी।

भाषा, क्षेत्र, सम्प्रदाय, प्रचलन की विभिन्नता ने सार्वभौम एकता में भारी व्यवधान खड़ा कर रखा है। अगले दिनों सभी विश्व नागरिक होंगे। विश्व मानव के रूप में विकसित हुए सार्वभौम सभ्यता की छत्रछाया में ही मनुष्य हिल-मिल कर रह सकेंगे। मिल बाँटकर खाते हुए हँसती-हँसाती जिन्दगी जी सकेंगे।

युग की आवश्यकता के अनुरूप नागरिक और वातावरण विनिर्मित करने वाली शिक्षा एवं साहित्य का नये सिरे से निर्माण होगा। उससे प्रभावित हुए बिना मनुष्य समाज का एक भी सदस्य बाकी न रहेगा। विद्यालयों के समकक्ष ही पुस्तकालयों का भी महत्त्व होगा। अध्यापकों की तरह साहित्य सृजेता भी जन-मानस को उच्च स्तरीय बनाने में समान योगदान देंगे।

प्रत्येक क्रिया-कलाप में सहकारिता आधारभूत व्यवस्था बनेगी। परिवार स्तर की निर्वाह पद्धति हर कहीं अपनाई जायेगी। उद्योग, मनोरंजन, उपभोग, विनिमय आदि में सहकारिता को अधिकाधिक स्थान दिया जायेगा। कोई अपने को एकाकी अनुभव न करेगा, 'हम

सब के सब हमारे' का मंत्र हर किसी के मन मानस में गूंजता रहेगा। इसी आधार पर वर्तमान का अनावरण तथा भविष्य का निर्धारण ढल कर रहेगा।

शासन को लोक जीवन में कम से कम हस्तक्षेप की आवश्यकता पड़ेगी। उसका वजन पंचायती और स्वेच्छा सेवी संस्थाएँ सहकारी समितियाँ पूरा कर देंगी। अवांछनीय तत्वों का नियन्त्रण और प्रगति का संतुलित मार्गदर्शन ही उसका प्रमुख कार्य रह जायेगा। चुनाव की पद्धति अति सरल और बिना खर्च वाली होगी। मौलिक अधिकारों के नाम पर किसी को असामाजिक कार्य करने की छूट न मिलेगी। दुर्बलों को न्याय मिलना कठिन न होगा। क्योंकि यथार्थता जाँचने की जिम्मेदारी पूरी तरह शासन संस्था वहन करेगी। अनुशासन को सर्वत्र मान्यता मिलने से भ्रष्टाचार की गुंजायश न अफसर के लिए रहेगी न जनसाधारण के लिए।

वैज्ञानिक, डॉक्टर, इंजीनियर, आर्चीटेक्ट, मनीषी, साहित्यकार, कलाकार जैसी प्रतिभाएँ सार्वजनिक सम्पति बन कर रहेंगी। वे अपनी विशेष योग्यता का विशेष मूल्य माँगने का दुस्साहस न करेंगी, कारण कि उन्हें अधिक समर्थ सुयोग्य बनाने में वर्तमान समाज एवं चिरकालीन संचित ज्ञान-सम्पदा का भी तो भरपूर लाभ मिलेगा। अकेला रह कर तो कोई व्यक्ति वनमानुष या नर वानर से अधिक कुछ बन ही नहीं सकता। जिसे अधिक मिला है उसे लोक सेवा का अधिक श्रेय लेकर ही संतोष करना चाहिए।

व्यक्ति को समाज का एक अविच्छिन्न घटक बन कर रहना होगा। मर्यादाओं का पालन और वर्जनाओं का अनुशासन शिरोधार्य करना होगा। उच्छृंखलता बरतने का न कोई प्रयास करेगा और न

समुदाय उसे वैसा करने देना सहन करेगा। अपना सुख बाँटना और दूसरों का दु:ख बँटाना, सही रहना और सही रहने देना, इसी में जियो और जीने दो का सिद्धान्त पलता है। मानवीय गरिमा को अक्षुण्ण बनाये रखने में ही मनुष्य का गौरव, सम्मान एवं स्तर बनता है। यह मान्यता अगले दिनों हर किसी को सच्चे मन से अपनानी होगी।

इन सिद्धान्तों का कहाँ, किसे प्रकार, कोन कैसे क्रियान्वयन करेगा? यह पिरस्थितियों पर निर्भर रहेगा, समस्त संसार में दच्च सिद्धान्त तो एक तरह अपनाये जा सकते है, पर उनके क्रियान्वयन में समयानुसार ही निर्धारण हो सकता है। इसलिए क्रियाकलापों की अपनी अपनी स्थिति के अनुरूप ही व्यवस्था बन सकती है। यह सुनिश्चित है कि भविष्य निश्चय ही उज्ज्वल एंव सुखद सम्भावनाओं से भरा पूरा होगा। वाङ्मय २७-३.६८/६९

सूर्योदय हो चला अब प्रकाश फैलाना ही बाकी है

नव-निर्माण के अवतरण की किरणें अगले दिनों प्रबुद्ध एवं जीवन्त आत्माओं पर बरसेंगी, वे व्यक्तिगत लाभ में संलग्न रहने की लिप्सा को लोक-मंगल के लिए उत्सर्ग करने की आन्तरिक पुकार सुनेंगे। यह पुकार इतनी तीव्र होगी कि चाहने पर वे भी संकीर्ण स्वार्थपरता भरा व्यक्तिवादी जीवन जी ही न सकेंगे। लोभ और मोह की जटिल जंजीरें वैसी ही टूटती दीखेंगी जैसे कृष्ण जन्म के समय बन्दी गृह के ताले अनायास ही खुल गये थे। यों मायाबद्ध नर कीटकों के लिए वासना और तृष्णा की परिधि तोड़ कर परमार्थ के क्षेत्र में कदम बढ़ाना लगभग असम्भव जैसा लगता है। पेट और प्रजनन की विडम्बनाओं के अतिरिक्त वे क्या आगे की ओर कुछ बात सोच या कर सकेंगे? पर समय ही बतायेगा कि इसी जाल

जंजाल में जकड़े हुए वर्गों में से कितनी प्रबुद्ध आत्माएँ उछल कर आगे आती हैं ओर सामान्य स्थिति में रहते हुए कितने ऐसे अद्भुत क्रिया-कलाप सम्पन्न करती हैं, जिन्हें देख कर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ेगा। जन्म जात रूप से तुच्छ स्थिति में जकड़े हुए व्यक्ति अगले दिनों जब महामानवों की भूमिका प्रस्तुत करते दिखाई पड़ें तो समझना चाहिए कि युग परिवर्तन का प्रकाश एवं चमत्कार सर्वसाधारणको प्रत्यक्ष हो चला। वाङ्मय २७-७.२

धर्म अपने वास्तविक स्वरूप में प्रकट होगा। उस के प्रसार प्रतिपादन का ठेका किसी वेश या वंश विशेष पर न रह जायेगा। सम्प्रदायवादियों के डेरे उखड़ जायेंगे, उन्हें मुफ्त के गुलछर्रे उड़ाने की सुविधा छिनती दीखेगी तो कोई उपयोगी धंधा अपना कर भले मानसों की तरह आजीविका उपार्जित करेंगे, तब उत्कृष्ट चरित्र, परिष्कृत ज्ञान एवं लोक-मंगल के लिए प्रस्तुत किया गया अनुदान ही किसी को सम्मानित या श्रद्धास्पद बना सकेगा। पाखण्ड पूजा के बल पर जीने वाले उलूक उस दिवा प्रकाश से भौचक्के होकर देखेंगे और किसी कोटर में बैठे दिन गुजारेंगे। अज्ञानान्धकार में जो पौ बारह रहती थी उन अतीत की स्मृतियों को वे ललचाई दृष्टि से सोचते चाहते तो रहेंगे, पर फिर समय लौटकर कभी आ न सकेगा।

अगले दिनों ज्ञान तंत्र ही धर्म तंत्र होगा। चरित्र-निर्माण और लोक-मंगल की गतिविधियाँ धार्मिक कर्मकाण्डों का स्थान ग्रहण करेंगी, तब लोग प्रतिमा पूजक देव मन्दिर बनाने की तुलना में पुस्तकाल, विद्यालय जैसे ज्ञान मन्दिर बनाने को महत्त्व देंगे। तीर्थ यात्राओं और ब्रह्मभोजों में लगने वाला धन लोक शिक्षण की भाव भरी सत्प्रवृत्तियों के लिए अर्पित किया जायेगा। कथा पुराणों की

कहानियाँ तब उतनी आवश्यक न मानी जायेंगी, जितनी जीवन समस्याओं को सुलझाने वाली, प्रेरणाप्रद अभिव्यंजनाएँ। धर्म अपने असली स्वरूप में निखर कर आयेगा। और उसके ऊपर चढ़ी हुए सड़ी-गली केंचुली उतर कर कूड़े-करकट के ढेर जा गिरेगी।

ज्ञान तंत्र वाणी और लेखनी तक ही सीमित न रहेगा वरन् उसे प्रचारात्मक, रचनात्मक एवं संघर्षात्मक कार्यक्रमों के साथ बौद्धिक, नैतिक और समाजिक क्रांति के लिए प्रयुक्त किया जायेगा। साहित्य, संगीत कला के विभिन्न पक्ष विविध प्रकार से लोक शिक्षण का उच्चस्तरीय प्रयोजन पूरा करेंगे। जिनके पास प्रतिभा है, जिनके पास सम्पदा है, वे उससे स्वयं लाभान्वित होने के स्थान पर समस्त समाज को समुन्नत करने के लिए समर्पित करेंगे।

(१) एकता, (२) समता, (३) ममता और (४) शुचिता नव-निर्माण के चार भावनात्मक आधार होंगे।

एक विश्व, एक राष्ट्र, एक भाषा, एक धर्म, एक आचार संहिता, एक संस्कृति के आधार पर समस्त मानव प्राणी एकता के रूप में बंधेंगे। विश्व बंधुत्व की भावना उभरेगी ओर वसुधैव कुटुम्बकम् का आदर्श सामने रहेगा, तब देश, धर्म, भाषा, वर्ण आदि के नाम पर मनुष्य-मनुष्य के बीच दीवार खड़ी न की जा सकेगी। अपने वर्ग के लिए नहीं समस्त विश्व के हित साधन की दृष्टि से समस्याओं पर विचार किया जायेगा।

जाति या लिंग के कारण किसी को ऊँचा या किसी को नीचा न ठहरा सकेंगे। छूत-अछूत का प्रश्न न रहेगा। गोरी चमड़ी वाले काले लोगों से श्रेष्ठ होने का दावा न करेंगे और ब्राह्मण हरिजन से ऊँचा न कहलायेगा। गुण, कर्म, स्वभाव, सेवा एवं बलिदान ही

किसी को सम्मानित होने के आधार बनेंगें, जाति या वंश नहीं। इसी प्रकार नारी से नर श्रेष्ठ है, उसे अधिक अधिकार प्राप्त है, ऐसी मान्यता हट जायेगी। दोनों के कर्त्तव्य और अधिकार एक होंगे। प्रतिबन्ध या मर्यादाएँ दोनों पर समान स्तर की लागू होंगी। प्राकृतिक सम्पदाओं पर सबका अधिकार होगा। पूँजी समाज की होगी। व्यक्ति अपनी आवश्यकतानुसार उसमें से प्राप्त करेंगे और सामर्थ्यनुसार काम करेंगे। न कोई धनपति होगा न निर्धन। मृतक उत्तराधिकार में केवल परिवार के असमर्थ सदस्य ही गुजारा प्राप्त कर सकेंगे। हट्टे-कट्टे और कमाऊ बेटे बाप के उपार्जन के दवेदार न बन सकेंगे, वह बचत राष्ट्र की सम्पदा होगी। इस प्रकार धनी और निर्धन के बीच का भेद समाप्त करने वाली समाजवादी व्यवस्था समस्त विश्व में लागू होगी। हरामखोरी करते रहने पर भी गुजछर्रे उड़ाने की सुविधा किसी को न मिलेगी। व्यापार सहकारी समितियों के हाथ में होगा। ममता केवल कुटुम्ब तक सीमित न रहेग, वरन वह मानव मात्र की परिधि लांघते हुए प्राणी मात्र तक विकसित होगी। अपना और दूसरों का दुःख-सुख एक-सा अनुभव होगा, तब न तो मांसाहार की छूट रहेगी ओर न पशु, पक्षियों के साथ निर्दयता बरतने की। ममता और आत्मीयता के बन्धनों में बँधे हुए सब लोग एक दूसरों को प्यार और सहयोग प्रदान करेंगे।

शरीर, मन, वस्त्र, उपकरण सभी को स्वच्छ रखने की प्रवृत्ति बढ़ेगी। शुचिता का सर्वांगीण विकास होगा। गन्दगी को मानवता का कलंक माना जायेगा। न किसी का शरीर मैला-कुचेला रहेगा न वस्त्र। घरों को गन्दा गलीज न रहने दिया जायेगा। मनुष्य और पशुओं के मल-मूत्र को पूरी तरह खाद के लिए प्रयुक्त किया जायेगा।

वस्तुएँ यथा स्थान, यथा क्रम और स्वच्छ रखने की आदत डाली जायेगी। मन में कोई छल-कपट दुर्भाव जैसी मलीनता न रखेगा।

एकता, समता, ममता और शुचिता इन चार मूल भूत सिद्धान्तों के आधार पर विभिन्न आचार संहिताएँ, रीति, नीति, विधि-व्यवस्थाएँ, मर्यादाएँ और परम्परायें बनाई जा सकती हैं। भौगोलिक अन्य परिस्थियों को देखते हुए उनमें हेर-फेर भी यत्किंचित होते रह सकते हैं, पर आधार उनके यही रहेंगे।

यह ध्यान रखने की बात है कि संसार की दो ही प्रमुख शक्तियाँ हैं- एक राजतंत्र, दूसरी धर्मतंत्र। राजसत्ता में भौतिक परिस्थितियों को प्रभावित करने की क्षमता है और धर्मसत्ता में अन्त:चेतना को। दोनों को कदम से कदम मिलाकर एक दूसरे की पूरक होकर रहना होगा। यह नारा थोथा है कि राजनीति से धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं। सच्ची बात यह है कि एक के बिना दूसरा अपूर्ण है। कर्त्तव्यनिष्ठ और सदाचारी नागरिकों के बिना कोई राज्य समर्थ समुन्नत नहीं हो सकता और राज्यसत्ता यदि धर्मसत्ता को उखाड़ने की ठान ले तो फिर उसके लिए कुछ अधिक करना कठिन है। राम राज्य तभी सफल रह सका, जब उस पर वशिष्ठ का नियन्त्रण था। चन्द्रगुप्त की शासन गरिमा का श्रेय चाणक्य के मार्ग-दर्शन को ही दिया जा सकता है। प्राचीन काल की यह परम्परा आगे भी चलेगी। धर्मसत्ता का स्थान पहला है, इसलिए राजसत्ता को उसका समर्थक और सहायक ही बनकर रहना चाहिए।

धर्मों के वर्तमान स्वरूप, प्रभाव और कलेवर की सहायता लेकर हमें वर्तमान जन-मानस को परिष्कृत करते चलना चाहिए। जमें हुए ढाँचे को न तो उखाड़ने की जरूरत है और न उसकी उपेक्षा

करने की चूँकि आधार आगे भी धर्म ही रहना है, इसलिए उपयुक्त यही है कि युग-निर्माण आन्दोलन की सृजन सेना धर्म तंत्र में प्रवेश करे और परम्परागत श्रद्धा को उन मूल-भूत आदर्शों को कार्यान्वित करने में प्रयुक्त करे जिनके लिए कि तत्वदर्शियों ने यह धर्म कलेवर खड़ा किया था। इस प्रकार धर्म तंत्र के साधनों को सृजनात्मक प्रयोजन में लगाकर उसे लोक-श्रद्धा का विषय बनाये रखा जा सकेगा।

नव निर्माण की पृष्ठभूमि धर्म मूलक 'ज्ञान' होगा। इसी के लिए ज्ञान तंत्र खड़ा किया गया है और ज्ञान यज्ञ का महान् अभियान चलाया गया। संकल्प साधनों से भी वह जिस द्रुत गति के साथ बढ़ता चला जा रहा है उसे देखते हुए पूर्व से सूर्योदय होने के और उसका प्रकाश सर्वत्र फैलने की बात पर सहज ही विश्वास किया जा सकता है। वाङ्मय २७-७.३/४

सतयुग की वापसी

दृश्य और प्रत्यक्ष परिस्थितियों का विश्लेषण करने वालों और निष्कर्ष निकालने वालों की तुलना में हमारे आभास इन दिनों सर्वथा भिन्न हैं। लगता है, एक-एक करके सभी संकट टल जायेंगे। अणु-युद्ध नहीं होगा और यह पृथ्वी भी वैसी बनी रहेगी, जैसी अब है। प्रदूषण को मनुष्य न सम्भाल सकेगा तो अन्तरिक्षीय प्रवाह उसका परिशोधन करेंगे। जनसंख्या जिस तेजी से अभी बढ़ रही है, एक दशाब्दी में वह दौड़ आधी घट जायेगी। रेगिस्तानों और ऊसरों को उपजाऊ बनाया जायेगा और नदियों को समुद्र तक पहुँचने से पूर्व इस प्रकार बाँध लिया जायेगा कि सिंचाई तथा अन्य प्रयोजनों के लिए पानी की कमी न पड़े।

प्रजातन्त्र के नाम पर चलने वाली धाँधली में कटौती होगी। वोट उपयुक्त व्यक्ति ही दे सकेंगे। अफसरों के स्थान पर पंचायतें शासन सम्भालेंगी और जन सहयोग से ऐसे प्रयास चल पड़ेंगे जिनकी कि इन दिनों सरकार पर ही निर्भरता रहती है। नया नेतृत्व उभरेगा। इन दिनों धर्म क्षेत्र के और राजनीति के लोग ही समाज का नेतृत्व करते हैं। अगले दिनों मनीषियों की एक नई बिरादरी का उदय होगा जो देश, जाति, वर्ग आदि के नाम पर विभाजित वर्तमान समुदाय को विश्व परिवार बनाकर रहने के लिए सहमत करेंगे, तब विग्रह नहीं, हर किसी पर सृजन और सहकार सवार होगा।

विश्व परिवार की भावना दिन-दिन जोर पकड़ेगी और एक दिन वह समय आयेगा जब विश्व राष्ट्र, आबद्ध विश्व नागरिक बिना आपस में टकराये प्रेम पूर्वक रहेंगे। मिल-जुलकर आगे बढ़ेंगे और वह परिस्थितियाँ उत्पन्न करेंगे जिसे पुरातन सतयुग के समतुल्य कहा जा सके। -वाङ्मय २७-७/५

इसके लिए नव सृजन का उत्साह उभरेगा। नये लोग नये परिवेश में आगे आयेंगे। ऐसे लोग जिनकी पिछले दिनों कोई चर्चा तक न थी, वे इस तत्परता से बागडोर सम्भालेंगे मानो वे इसी प्रयोजन के लिए कहीं ऊपर आसमान से उतरे हों या धरती फोड़ कर निकले हों।

यह हमारे स्वप्नों का संसार है। इनके पीछे कल्पनाएँ अटकलें काम नहीं कर रही हैं, वरन् अदृश्य जगत में चल रही हलचलों को देखकर इस प्रकार का आभास मिलता है जिसे हम सत्य के अधिकतम निकट देख रहे हैं।

मरणोन्मुख प्रवाह में इस प्रकार आमूल-चूल परिवर्तन होने के पीछे उन दैवी शक्तियों का हाथ है जो दृश्यमान न होते हुए भी वातावरण बदल रही हैं और लोक चिन्तन में अध्यात्म तत्वों का समावेश कर रही हैं। महान् कार्यों के लिए किसी जादुई कलेवर वाले लोग नहीं होते। अपने जैसे ही हाड़-मांस के लोग जब दृष्टिकोण, रुझान एवं पराक्रम की दिशा बदलते हैं तो वे कुछ से कुछ बन जाते हैं। -वाङ्मय २७-७/६

भारत का भविष्य उज्ज्वल है। उत्साह और उल्लासवर्धक समय आने में थोड़ी देर है, पर यह सुनिश्चित है कि भारत की गरिमा बढ़ेगी ही नहीं, स्थिर भी रहेगी। जबकि इन दिनों आसमान पर अन्धड़ की तरह छाये हुए लोग या देश-धूलि चाटते दृष्टिगोचर होंगे। समय की प्रतिकूलता उनके दर्प को चुर-चूर कर देगी, पर भारत इन कटीली झाड़ियों के बीच भी गिरेगा नहीं, उठता ही रहेगा। भले ही उस उठाव की गति धीमी रहे। -वाङ्मय २७-७/७

भारत का भविष्य निश्चित रूप में उज्ज्वल है

भारत पर अभी उन ऋषि-तपस्वियों की छत्र-छाया है जिनके प्रयास से निष्ठुर पराधीनता से पीछा छूटा। इन दिनों वे भीतर से उद्भूत और बाहर के प्रहार से बचाने में अपनी शक्ति लगाये हुए हैं। अनर्थ तक स्थिति न पहुँच पावे, इसके निमित्त संरक्षण दे रही हैं। इन उपलब्धियों को भी कम नहीं माना जाना चाहिए।

श्री अरविंद के अनुसार मानव जाति का एकीकरण प्रगति के पथ पर है, चाहे वह अभी अधूरा आरम्भिक स्तर पर ही क्यों न हो वह संगठित किया जा चुका है और भारी कठिनाइयों के विरुद्ध संघर्ष कर रहा है, परन्तु उसमें बल और वेग है और यदि इतिहास के

अनुभव को मार्ग-दर्शक माना जा सके तो, वह अनिवार्य रूप से बढ़ता चला जायेगा और अन्त में विजयी होगा। इस कार्य में भारतवर्ष की ऋषि-सत्ताओं ने सक्रिय रूप से प्रमुख भाग लेना प्रारम्भ कर दिया है। विश्व को उनका अजस्त्र आध्यात्मिक अनुदान मिलना प्रारम्भ हो ही चुका है। भारत की आध्यात्मिकता यूरोप और अमेरिका में नित्य बढ़ती हुई मात्रा में प्रवेश कर रही है। यह आन्दोलन बढ़ेगा। प्रस्तुत काल की विपन्नताओ-विपदाओं के बीच अधिकाधिक लोगों की आँखे आशा के साथ भारत की ओर मुड़ रही हैं और न केवल उसकी शिक्षाओं का, वरन् उसकी अन्तरात्मिक और आध्यात्मिक साधना का भी अधिकाधिक आश्रय लिया जा रहा है।

उज्ज्वल भविष्य का निर्धारण परम इच्छा-शक्ति का निर्धारण है और तदनुरूप ही उच्चस्तरीय आदर्शवादी विचारक्रान्ति का श्रीगणेश भी हो चुका है। इस महाअभियान ने भारत सहित समूचे पाश्चात्य जगत के दूरदर्शी विचारकों-मनीषियों को अपने वश करना शुरू कर दिया है। इस मार्ग मे यद्यपि अन्यान्य मार्गों की अपेक्षा जबर्दस्त कठिनाइयाँ हैं फिर भी समय रहते वे सभी निरस्त होंगी। अगले दिनों जो भी विकासक्रम घटित होने जा रहा है, वह आत्मा और अंतर्चेतना की अभिवृद्धि द्वारा ही होगा। उसका शुभारम्भ भारतवर्ष करेगा और वही आन्दोलन का केन्द्र होगा, तथापि इसका कार्यक्षेत्र विश्वव्यापी होगा। भारत का भविष्य उज्ज्वल है इस सुनिश्चितता पर सबको विश्वास करना चाहिए।

-वाङ्मय २७-७/८

आन्तरिक्ष में चल रही उच्चस्तरीय उथलपुलें

हमारे अतिरिक्त और कहीं कोई कुछ नहीं कर रहा यह कहना तो उद्दण्ड आत्म श्लाघा और गर्वोक्ति ही होगी, पर तथ्यों के प्रगट रहते हुए यदि यह कहना पड़े कि प्रज्ञा अभियान ने इस या उस प्रकार से लोक मानस को झक-झोरने, नये ढंग से सोचने, नया कुछ करने के लिए ब्रह्म मुहूर्त की तरह अपनी व्यापक भूमिका निभाई है तो उसे विनम्रता की रक्षा करते हुए भी एक प्रत्यक्ष रहस्योद्घाटन की तरह बिना किसी संकोच, असमंजस एवं झिझक के यथार्थ बोध की तरह जनसाधारण के सम्मुख प्रगट किया जा सकता है।

इन दिनों अदृश्य जगत में आशातीत परिवर्तन हो रहे हैं। उसका सबसे बड़ा प्रमाण एक है कि नव-सृजन की उमंग जन-जन के मन में उठ रही है। प्रज्ञा अभियान के समर्थकों और सहयोगियों की संख्या जितनी तेजी से बढ़ रही है उसे देखते हुए यह अनुमान लगाने में किसी को कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि प्रज्ञा उभर रही है। कहीं से कोई अदृश्य तेजस्व ऐसा उभर रहा है जिससे मुँदी कलियाँ अनायास ही खिलती चली जा रही हैं। प्रज्ञा परिजनों का प्रज्ञा पुत्रों का उभरता परमार्थ परम पौरुष यह बताता है कि अदृश्य लोक में कुछ ब्रह्म-मुहूर्त जैसी, उषा-काल जैसी अतिरिक्त ऊर्जा उभरी है। जागृत आत्माएँ नव-सृजन के लिए जिस स्तर की उमंगें तथा तत्परताएँ प्रदर्शित कर रही हैं उन्हें देखते हुए इस तथ्य का समझना सरल हो जाता है कि परिवर्तन की युगान्तरीय चेतना क्रमशः अपनी प्रखरता को प्रचण्ड ही करती चली जा रही है।

-वाङ्मय २७-७/१४

चिन्तन चेतना में उत्कृष्टता उभरे

देश के कर्णधारों का चिन्तन एक विषेश ढाँचे में ढल जाता है, कि प्रगति के लिए सम्पन्नता बढ़ाने भर से काम हो जायेगा। वे यह भूल जाते हैं कि बढ़ी हुई, सम्पन्नत का उपयोग यदि अनर्थ कृत्यों में होने लगा तो वह दरिद्रता से महँगी पड़ेगी। इसलिए घोड़ा खरीदते समय उसकी लगाम और जीन का भी प्रबन्ध करना चाहिए अन्यथा वह उच्छृंखल होकर किसी भी दिशा में धर दौड़ेगा और किसी खाई खड्ड में सवार को ले गिरेगा।

साधनों का संवर्धन करते समय इस तथ्य पर पूरा-पूरा ध्यान रखा ज़ाना चाहिए कि उपलब्धियों का सही उपयोग बन पड़े। ऐसे दूरदर्शी विवेक से भरा पूरा लक्षण जन-साधारण को मिल रहा है या नहीं? कर्त्तृत्वों को परिष्कृत किया जा रहा है या नहीं? चिन्तन, चरित्र और व्यवहार को आदर्शवादिता के रंग में रंगा जा रहा है या नहीं? उपार्जन और चिन्तन का अविच्छिन्न युग्म है। यह दोनों जब साथ-साथ रहेंगे तभी प्रसन्नता का वातावरण बनेगा। जैसे एक हाथ से ताली नहीं बजती। एक पहिए की गाड़ी दूर तक नहीं चलती, उसी प्रकार इन दोनों में से किसी एक को लेकर चल पड़ने पर अभीष्ट की उपलब्धि नहीं हो सकती और न उज्ज्वल भविष्य का आधार खड़ा किया जा सकता है। वाङ्मय २७-७.१५/१६

विनाश विभीषिकाओं का अन्त होकर रहेगा

अदृश्यदर्शी अपनी दिव्य दृष्टि से यही सब होते हुए देख रहे हैं। उन्हें हस्तामलकवत् यह दीख रहा है कि मनुष्य ने अपनी मर्यादा और गरिमा को तिलांजलि दे दी है। फलस्वरूप अदृश्य वातावरण विषाक्त हो गया। प्रकृति प्रतिकूलताएँ उगलने लगीं, विपत्ति बरसाने

लगी और ऐसी दलदल जैसी परिस्थिति बन गई जिसकी विभीषिका विश्व विनाश जैसा संकट खड़ा किये हुए है। आशंका और आतंक से हर किसी का दिल धड़क रहा है।

उबरने का उपाय एक ही है, मानवी सुधार प्रयासों के असफल हो जाने पर उसका दूसरा उपचार आद्यशक्ति महाप्रज्ञा के अवतरण रूप में समाने आये और अपने वीरभद्रों को सुधार प्रयासों में जुटाये। विश्वास यही बन गया है कि यही होकर रहेगा। असुरता की लंका जलेगी और देवत्व उदय एवं धरती पर स्वर्ग के अवतरण वाला राम स्वयं फिर से नये में प्रकट होगा। इस प्रकटीकरण का प्रत्यक्ष प्रभाव एक ही रूप में दीख पड़ेगा कि युग-शिल्पियों की एक सृजन वाहिनी अनायास ही इन दिनों उग पड़ेगी। उसका पुरुषार्थ उन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करेगा, जिनकी कि इन्हीं घड़ियों में अविलम्ब आवश्यकता है। बुरा समय इन दिनों घिरा हुआ दीख अवश्य रहा है, पर ऐसा प्रचण्ड वायु वेग का माहौल भी बन रहा है, जो इन घटाटोपों को उड़ाकर कहीं से कहीं पहुँचा देगा। वाङ्मय २७-७/२०

भावी परिर्तन की पृष्ठ भूमि

साक्षर बनने की शिक्षा चिरकाल से उपलब्ध है। स्कूलों और कालेजों में हमारे बच्चे बहुत-सी जानकारियाँ प्राप्त करते हैं और बहुज्ञ प्रतीत होते हैं। अवसर मिलता है तो अफसर भी बन जाते हैं और कई प्रकार के कौशल दिखाकर सम्पन्नता भी बटोरते हैं। येन, केन प्रकारेण प्रख्यात भी हो जाते हैं, पर इतने भर से कोई ठोस उपलब्धि हाथ नहीं लगती। बहुरूपिये, नट, बाजीगरों, जैसे कौतूहल उत्पन्न करते रहे हैं, पर वह सूत्र हाथ नहीं आते जिनके सहारे कि महान् बना जाता है।

अगले दिनों ऐसी शिक्षा का प्रबन्ध करना पड़ेगा जिससे मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप एवं कर्त्तव्य-दायित्व का गंभीरतापूर्वक भान करे। साथ में ऐसा आचरण भी करे जो आत्मा की पुकार, परमात्मा के संकेत एवं युगधर्म की चुनौती स्वीकारने के लिए विवश कर सके। ऐसी शिक्षा स्कूली पाठ्यक्रम में छात्रों के लिए सम्मिलित रहेगी। अध्यापकों को अपना चरित्र उसी ढाँचे में ढला हुआ सिद्ध करना पड़ेगा। यह नियमित पढ़ाई की बात हुई जिसे स्कूली शिक्षा कहते हैं। यह आवश्यक तो है पर पर्याप्त नहीं। धर्मोपदेशकों, कर्णधारों, नेतृत्व कर सकने की स्थिति में पहुँचे हुए साहित्यकारों, कलाकारों को अपने-अपने साधनों एवं कौशल के सहारे जन-मानस में वह प्रेरणा गहराई तक पहुँचानी पड़ेगी, जिसके सहारे अपने व्यक्तित्व को विभूतिवान, प्रतिभावान, चरित्रवान और कर्त्तव्यपरायण सिद्ध कर सकें। ऐसी शिक्षा के लिए हमें अभी से तैयारी करनी होगी, जिससे कि अगली शताब्दी का जन-समुदाय आदर्शवादी, कर्मनिष्ठ और सिद्धान्तों के प्रति आस्थावान, दृढ़व्रती दृष्टिगोचर हो सके। वाङ्मय २७-७/२९

प्रतिभायें अग्रिम पंक्तियों में आये

अब नयी उलट-पलट में यह होने जा रहा है कि मूर्धन्य वर्ग का बहुत बड़ा भाग युग चेतना से प्रभावित होगा और अपनी दिशा धारा को, उलट कर उस दिशा को अपनायेगा, जिसके लिए युग धर्म ने समझाया, पुकारा और ललकारा है। शक्ति की महिमा महत्ता सभी जानते हैं, वह जिस भी दिशा में कटिबद्ध होती है, उसी में सफलताओं के अम्बार लगा देती है। अब तक बिगाड़ की दिशा अपनाई तो उसमें भी चमत्कार कर दिखाया। अब यदि उनका मानस बदलता

है, तो समझना चाहिए कि उस बदलाव का प्रभाव भी कम न पड़ेगा। वे ऐसी गतिविधियाँ भी अपना सकते हैं, जो उनके स्वयं के लिए तो श्रेयस्कर होती हैं, अगणित लोगों को भी अपने प्रभाव से प्रकाशित करेंगी।

साहित्यकार, प्रकाशक, मुद्रक, बुकसेलर एक संयुक्त वर्ग है। यह मिल-जुल कर ऐसे साहित्य का सृजन, प्रकाशन और वितरण करे जो युग धर्म के अनुरूप हो तो उसका प्रभाव भी शिक्षित वर्ग पर कम न पड़ेगा। अब तक इस वर्ग में से अधिकांश ने ऐसा मसाला प्रस्तुत किया है जो पाठकों को अंधविश्वासों और दुश्चिन्तनों की ओर धकेलता रहा है। उस प्रभाव से अगणित प्रभावित हुए हैं और बड़ा-सा लोक मानस उसी ढाँचे में ढला है। अब जब सांचा बदलेगा तो उसमें ढलने वाले पुर्जे दूसरे रंग ढंग के होंगे। सत्साहित्य कितना प्रेरक होता है। इसके साक्षी ईसाइयों, कम्युनिस्टों और क्रांतियाँ प्रस्तुत करते रहने वालों से पूछकर कारगर निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है।

-वाङ्मय २७-७/३०

धनवान चाहे तो कुटीर उद्योगों का ताना-बाना बुन कर लाखों करोड़ों को काम दे सकता है। वे शिक्षा संस्थान चला सकते हैं। प्रकाशन हाथ में लेकर वातावरण को बदल सकते हैं। लोक सेवियों को प्रश्रय दे सकते हैं। धनवानों से कहा जाय कि जिस चतुरता से उन्होंने उपार्जन किया है, उसी प्रकार दूरदर्शिता का आश्रय लेकर ऐसी सत्प्रवृत्तियों को अग्रगामी बनायें जिनसे नई हवा चल सके, नया वातावरण बन सके और नया युग बन सके।

-वाङ्मय २७-७/३१

युग परिवर्तन-नियन्ता का सुनिश्चित आश्वासन

विश्वास किया जाना चाहिए कि यह मूर्धन्य वर्ग इन्हीं दिनों अपने भीतर समुद्र मंथन जैसी हलचलें अनुभव करेंगे और उस दिशा में कदम बढ़ायेंगे जिन पर चलने से सबका कल्याण ही कल्याण है। इन दिनों विपत्तियों के बरसने की वेला है। उनसे पीड़ितों को सहायता की आवश्यता पड़ेगी। धनवानों की थैलियाँ उस प्रयोजन के लिए भी काम आ सकती हैं।

इतिहास भी इस तथ्य का साक्षी है कि जब-जब भी बिगाड़ बेकाबू हुआ है, उसे नियन्त्रित करने हेतु महाकाल रूपी महावतों की मार ही सफल हो पाई है। प्रकारान्तर से इसे भगवान् के अवतार की संज्ञा भी दी जा सकती है। अदृश्य युग प्रवाह विनिर्मित होना ही प्रज्ञावतरण है। समझ जब काम नहीं करती, तब अदृश्य जगत से, परोक्ष के व्यवस्था उपक्रम से यह अपेक्षा की जाती है कि वह इस धरित्री को महाविनाश के गर्त में जाने नहीं देगा जिसकी इच्छा से इस सृष्टि का प्रारूप बना व मानव रूपी युवराज जन्मा, उसे जगती का वर्तमान चोला ही पसन्द है यह सोचना नासमझी है। नियन्ता ने सदैव सन्तुलन स्थापित करने हेतु दौड़ लगाने का अपना वचन निभाया है।

आसन्न विभीषिकाओं से डरें नहीं, समाधान सोचें

युग संधि के मध्यवर्ती बीस वर्षों में जो महान् परिवर्तन होने हैं उनमें बहुत कुछ तो अदृश्य ही रहेगा। क्योंकि परिवर्तन पदार्थों का नहीं आस्थाओं का होना है। आस्थाएँ दीखती नहीं इसलिए इस क्षेत्र की उथल-पुथल का स्वरूप समझना और विवरण लिखना किसी के लिए भी शक्य न हो सकेगा। जो दृश्यमान है चर्चा उसी की होगी। दृश्य घटनाक्रमों में एक होगा अशुभ का निराकरण, उन्मूलन।

दूसरा होगा शुभ का आरोपण, अभिवर्धन। एक के लिए अनावश्यक और अवाँछनीय को हटाने की ध्वंसात्मक प्रक्रिया चलेगी और दूसरी ओर भावनात्मक नव-निर्माण के अनेकानेक आधार खड़े होंगे।

ध्वंस और सृजन की दोनों ही प्रवृत्तियाँ अपने-अपने मोर्चे पर कमाल करती हुई दिखाई पडेंगी। इसे प्रसव पीड़ा के समतुल्य माना जा सकता है, जिससे कष्ट और रक्तपात का रोमाँचकारी घटनाक्रम भी घटित होता है। साथ ही नवजात शिशु की उल्लास भरी प्रतिमा और उसके आगमन से बनती हुई दूरगामी सम्भावना से उमंगें भी उठती हैं। बालक के पोषण की योजनायें बनती और तैयारी चलती है। पीड़ा और प्रसन्नता का जैसा अद्भूत समन्वय प्रसव पीड़ा के अवसर पर देखा जाता है ठीक वैसा ही इन बीस वर्षों में चलता रहेगा। शिशु-जन्म की उथल-पुथल कुछ घण्टे में ही निपट जाती है। नवयुवक का जन्म होने में बीस वर्ष लगते हैं जो कार्य के वजन, महत्व और विस्तार को देखते हुए कुछ अधिक नहीं है।

चर्चा ध्वंस की चल रही है। आवश्यक नहीं कि विनाश-लीला की चपेट में मात्र अवांछनीयता ही आये। सज्जनता को भी परिस्थिति के दबाव में त्रास सहना पड़ सकता है। गेहूँ के साथ चक्की में घुन भी पीस जाता है। सूखे के साथ गीला भी जलता है। रोग कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए खाई गई औषधि स्वस्थ कणों को भी हानि पहुँचाती है। यह अपवाद तो चलते ही रहते हैं किन्तु सामान्यतया होता यही है कि गेहूँ ही पिसता है, सूखा ही जलता है, विषाणु ही मरते है। उथल-पुथल की बेला में, प्रकृति की विनाश-लीला में अवाँछनीयता का उन्मूलन ही उद्देश्य रहता है। चपेट में दूसरे भी आ जाएँ तो बस बात दूसरी है।

चपेट में निर्दोष दिखने वालों के आने का भी एक कारण है। यह समूची सृष्टि आत्म-सत्ता के सूत्र में बंधी है। उसका संचालन संयुक्त जिम्मेदारी के आधार पर हो रहा है सब पुर्जे मिलकर काम करते हैं तो घड़ी चलती है। संसार को समुन्नत, समाज को सुसंस्कृत रखना भी सबका सम्मिलित उत्तरदायित्व है। व्यक्तिगत सुख-शांति की तरह ही सामूहिक प्रगति और समृद्धि के लिए प्रयत्न होना चाहिए। मानवी सत्ता के साथ ईश्वर प्रदत्त यह जिम्मेदारी हर किसी पर लदी है कि वह जितना ध्यान अपनी निजी सुविधा बढ़ाने और भविष्य को बनाने पर देता है उतना ही विश्व-उद्यान को सुरम्य बनाने पर दे। (वाङ्मय २७-६.९)

परिवर्तन की अदृश्य किन्तु अद्भुत प्रक्रिया

पर यह परिवर्तन कितनी धूम-धड़ाके के साथ किस दिन सम्पन्न हुए यह नहीं कहा जा सकता। संस्कृति में आधुनिकता का समावेश हुआ है। पुरानी पीढ़ी की तुलना में आज का आहार-विहार ही नहीं व्यवहार, दृष्टिकोण एवं स्वभाव भी आश्चर्यजनक रीति से असाधारण रूप से परिवर्तन हो गया, पर यह नहीं कहा जा सकता कि इतना बड़ा परिवर्तन किस घड़ी मुहूर्त में सम्पन्न हुआ। बदलाव तो आया, पर उसकी गति एवं प्रक्रिया इतनी धीमी इतनी बिखरी रही कि बदल बहुत कुछ गया पर उस उलट-फेर का निश्चित समय, स्थान एंव क्रम विवेचना पूर्वक नहीं बताया जा सकता।

शरीर की जीवकोशिकाएँ एक वर्ष के भीतर प्राय: पूरी तरह बदल जाती है। उनके जन्मने मरने का क्रम हर घड़ी जारी रहता है, किन्तु प्रत्यक्षत: वही शरीर यथावत् बना हुआ प्रतीत होता है। साँप

केचुल बदलता रहता है, पर उसकी सत्ता वैसी ही बनी रहती है जैसी कि पहले थी। सूर्य अपने सौर मण्डल को समेटे महासूर्य की परिक्रमा पथ पर द्रुतगति से दौड़ता रहता है। आकाश के जिस क्षेत्र में आज हम हैं उसमें वापस लौटने में हजारों वर्ष लगेंगे। तब तक अपने दसियों जन्म हो चुके होंगे। इतने पर भी यही प्रतीत होता रहता हैं कि हम जहाँ के तहाँ हैं। धरती, आकाश, सूर्य, सितारे आदि अपना स्थान बदलते और अग्रगामी होते रहते हैं, पर हमें स्थिरता ही दृष्टिगोचर होती रहती है।

युग संधि की बेला में सब कुछ तेजी से बदल रहा है भले ही उसे हम प्रत्यक्ष अनुभव न करते हों। माता के गर्भ में भ्रूण आरंभ में एक बबूला मात्र होता है, किन्तु नौ मास पूरे होते-होते वह इस इस योग्य-परिपक्व हो जाता है कि प्रसव का झटका सह सके और उन्मुक्त वायुमण्डल की सर्वथा बदली हुई परिस्थितियों में साँस ले सके। यह परिवर्तन क्रम देख समझ नहीं पाते। गर्भाधान के उपरान्त प्रसव की ही प्रत्यक्ष घटना होती है इस बीज का जो विकास क्रम चलता रहता है, उसे हम प्रत्यक्ष न तो देख पाते हैं और न अनुभव करते हैं। युग परिवर्तन की प्रक्रिया भी इसी अदृश्य वास्तविकता के साथ द्रुतगति से अग्रगामी हो रही है। (वाङ्मय २७-७.३७ से ७.३८)

दिव्य सम्भावना सुनिश्चित है

जो घटित होने वाला है उस सफलता के लिए श्रेयाधिकारी-भागीदारी बनने से दूरदर्शी विज्ञजनों में से किसी को भी चूकना नहीं चाहिए। यह लोभ, मोह के लिए खपने और अहंकार प्रदर्शन के लिए-ठाट-बाट बनाने की बात सोचने और उसी स्तर की धारणा, रीति-नीति अपनाये रहने का समय नहीं है। औसत नागरिक स्तर

का निर्वाह और परिवार को बढ़ाने की अपेक्षा स्वावलम्बी बनाने का निर्धारण किया जाय तो वह बुद्धिमत्ता भरा लाभदायक निर्धारण होगा। जिनसे इतना बन पड़ेगा वे देखेंगे कि उनके पास युग सृजन के निमित्त कितना अधिक तन, मन, धन का वैभव समर्पित करने योग्य बच जाता है, जबकि लिप्साओं में ग्रस्त रहने पर सदा व्यस्तता और अभाव ग्रस्तता की ही शिकायत बनी रहती है। श्रेय सम्भावना की भागीदारी में सम्मिलित होने का सुयोग्य, सौभाग्य जिन्हें अर्जित करना है तो हमारी ही तरह भौतिक जगत में संयमी सेवाधर्मी बनना पड़ेगा। इतना कर सकने वाले ही अगले दिनों की दिव्य भूमिका में हमारे छोड़े उत्तराधिकार को वहन कर सकेंगे। पीछे रहकर भी हमें बल देते रह सकेंगे। (वाङ्मय २७-७.४१)

निकट भविष्य में यह परिस्थितियाँ सामने आयेंगी

हक्सले ने अपने ग्रन्थ "दि जीनियस एण्ड दि गार्डस" में ये संकेत दिया है कि प्रजा का स्तर उठाये बिना आजकल जो प्रजातंत्र का छक्का चल रहा है उससे केवल निहित स्वार्थों का भला होगा। प्रजा जब अपना कर्त्तव्य और अधिकार समझ ही नहीं सकेगी तो उसका मत पत्र कोई भी झटक लेगा ऐसी दशा में वह उद्देश्य पूरा न हो सकेगा जिसके अनुसार प्रजा द्वारा प्रजा के लिए शासन करने और सबको न्याय मिलने की घोषणा की गई थी। प्रजातंत्र क्रमशः एकाधिकारी शासन में बदलते जायेंगे। यह उनकी असफलता की स्पष्ट घोषणा होगी। किन्तु इससे भी कोई हल न निकलेगा। अधिनायकों की सनकें सामन्तवादी शासन काल में रहने वाली प्रजा की अधिक पराधीन परिस्थिति लाकर खड़ी कर देगी और लोग अपने को विवशता से घिरे, लाचार और असहाय प्राणी की तरह अनुभव करेंगे।

इक्कीसवीं सदी की रूपरेखा

वंशानुक्रम के परिवर्तन को लोग आश्चर्य की दृष्टि से देखेंगे, जिसकी रूचि भौतिकवाद की ओर न होकर अध्यात्म की ओर होगी। स्वस्थ रहने के नये तरीके, वजन घटाने के लिए प्राकृतिक माध्यम, स्वप्नों का सदुपयोग, मनुष्य के अंग अवयवों का प्रतिरूप जो संकट में काम आ सके तथा वैचारिक आदान-प्रदान का मस्तिष्कीय तरंगों द्वारा प्रयोग, जिससे लोग अध्यात्म की ओर रुचि रखने लगेंगे। जनसंख्या अभिवृद्धि को रोकने के लिए संमय-नियम से जन्म दर को रोकने की नई एवं प्राचीन विद्या के प्रति विश्वास उत्पन्न होगा। (वाङ्मय २७-९.१ से ९.२)

समूचा विश्व एक परिवार के रूप में विकसित होगा तब अपराधियों की संख्या स्वयं ही कम हो जायेगी। भ्रातृभावना जन-जन के मनों को आन्दोलित करेगी और बाध्य करेगी कि वह न अनीति बरते और न ही इसे समर्थन दे। ब्राह्मणत्व पुनर्जीवित होगा, उसका एक ही आधार रहेगा कि किसने अपनी आवश्यकता को कम किया और कम साधनों में निर्वाह किया।

सभी राष्ट्र एक होकर जल एवं वायु प्रदूषण के लिए सामूहिक उपचार की बात सोचेंगे, क्योंकि इन दोनों का प्रदूषण किसी-न-किसी रूप में समूचे विश्व को प्रभावित करेगा। इस प्रकार भौगोलिक सीमा बन्धन न रहेगा और सभी राष्ट्र अपनी-अपनी समस्याओं का एक साथ मिल बैठ कर समाधान सोचेंगे, तब एक विश्व एवं उसकी एक व्यवस्था की कल्पना साकार हो जायेगी। यह वही समय होगा, जिसे भविष्य वक्ताओं ने "इक्कीसवीं सदी बनाम उज्जवल भविष्य" का सम्बोधन दिया है। (वाङ्मय २७-९.४७)

हमारा आत्मवादी जीवन दर्शन

मनुष्य को सदाचरण की मर्यादा में रखने, समाज के प्रति कर्त्तव्य पालन करने एवं स्नेह-सौजन्य का उदार परिचय देने के लिए तत्पर करना साधारण नहीं, असाधारण कार्य है। यह कार्य राजसत्ता के द्वारा किया तो जाता है, पर पूरी तरह सम्भव हो नहीं पाता। राजसत्ता का आयुध दण्ड है। कानून, पुलिस, कचहरी, जेल आदि तक उसका क्रियाकलाप सीमित है। इस पकड़ से बच निकलने के लिए मनुष्य हजारों रास्ते निकाल लेता है। अपराधियों में से थोड़े पकड़ में आते हैं। जो पकड़ जाते हैं, उनमें से बहुत कम को दण्ड मिलता है और जिन्हें दण्ड मिलता है उनमें से बहुत थोड़ों में सुधार होता है, अधिकांश तो उनमें से अपराधी प्रवृत्ति में पारंगत, अभ्यासी एवं निर्लज्ज ही हो जाते हैं। सुधार के उद्देश्य से बनाये गये प्रजातन्त्री कानून तो अपराधों के नियंत्रण में प्राय: असफल ही रहते हैं। यदि राजसत्ता ने कभी दुष्टता, दुर्बुद्धि को रोका है, तो उसके लिये नृशंस आतंकवादी दमन ही फलीभूत हुआ है।

आन्तरिक स्तर को उत्कृष्ट और समुन्नत बनाने के लिए दार्शनिक आस्थाएँ ही काम करती हैं। यह प्रयोजन धर्म, अध्यात्म और आस्तिकता के सहारे पूरा किया जाता रहा है। यह तत्त्वदर्शन यदि सही स्तर का हो, तो निस्संदेह उससे व्यक्ति की महत्ता को अक्षुण्ण बनाये रखने और विकसित करने का उद्देश्य पूरा होता रह सकता है। दुर्भाग्य यही रहा कि पिछले दिनों इन महान् अवलम्बनों को भी विकृत कर दिया गया। अब ईश्वर का रूप यह है कि वह थोड़ी पूजा-पत्री करने वालों से, भोग प्रसाद खिलाने वालों से प्रसन्न होकर पात्रता और पुरुषार्थ न होने पर भी मनोकामनाएँ पूर्ण करने वाला मान

लिया गया है। कर्मकाण्ड करने पर पाप कर्मों के दण्ड से छुटकारा मिलने की बात सरेआम कही जाती हैं, ऐसी दशा में आस्तिकवाद का मूल उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है। भाग्यवादी परावलम्बन और पाप दण्ड से बचने की निर्भयता द्वारा व्यक्ति व समाज का पतन ही हो सकता है, उत्थान नहीं। अध्यात्म की विकृत मान्यताओं ने उसकी सारी उपयोगिता नष्ट कर दी।

दूसरा विकल्प देश-भक्ति, समाज निष्ठा नीति- शास्त्र के रूप में पिछले दिनों रखे गये हैं। पर वे दार्शनिक स्तर के नहीं रखे जा सके, उन्हें भौतिक उपयोगिता के आधार पर प्रतिपादित किया। फलतः नीति के रूप में उन्हें मान्यता मिली। आस्था के मर्मस्थल तक उनका प्रवेश न हो सका, यही कारण है कि समाज निष्ठा का जोर शोर से प्रतिपादन करने वाले लोग भी भीतर ही भीतर इतने कुकर्म करते पाये जाते हैं कि कथनी और करनी का भारी अन्तर आश्चर्यचकित कर देता है।

ऐसी दशा में परिष्कृत जीवन दर्शन का स्वरूप स्थिर करने की आवश्यकता सामने आती है। इसके लिए आत्मवादी वेदान्त दर्शन ही मन के उपयुक्त बैठता है। हम मूलतः ईश्वर के पुत्र राजकुमार और दिव्य विशेषताओं से भरे पूरे हैं। हमारे सामने ईश्वर द्वारा सौंपा गया आत्मपरिष्कार एवं लोक-मंगल का विशाल उत्तरदायित्व प्रस्तुत है। निकृष्ट चिन्तन एवं घृणित कर्तृत्व हमारी गौरव गरिमा पर लगा हुआ कलंक है, जिसे अविलम्ब निरस्त किया जाना चाहिए। यह विश्व भगवान् का साकार रूप है। इसे सुन्दर, सुव्यवस्थित, समुन्नत बनाने की कर्मठ साधना की जानी चाहिए। प्रत्येक के साथ सौहार्द्र, सौजन्य का व्यवहार किया जाना चाहिए। यही है आत्मवादी तत्त्वदर्शन,

जिसे जन मानस में प्रतिष्ठापित करने के लिये युग निर्माण योजना द्वारा पूरी तत्परता के साथ प्रयुक्त किया जा रहा है। यदि यह आत्मवादी जीवन दर्शन लोक श्रद्धा में परिणत हो सका, तो विश्वास किया जाना चाहिए कि सतयुगी वातावरण का, मनुष्य कलेवर में देव ज्योति का दर्शन कर सकना निश्चित रूप से सम्भव हो सकेगा।

मनुष्य अपने आप में महान् है। उसमें सम्पूर्ण देव सत्ता और उत्कृष्टतम गरिमा ओत-प्रोत है। यह आत्मा ही परमात्मा का स्वरूप है। माया, मलीनता, भ्रान्ति ही समस्त दुःख शोक का कारण है। इस मान्यता में आत्मानुभूति पर ही सारा ध्यान केन्द्रित किया गया है कि इस मार्ग पर जितनी प्रगति होगी व्यक्ति उतना ही महान् बनता चला जाएगा। यही आत्मदर्शन है। इसमें न ईश्वर भक्ति की तरह पक्षपात की आशा है और न समाज भक्ति की तरह बुद्धिबल के आधार पर उलटी-सीधी व्यवस्थाएँ गढ़ डालने की गुंजाइश। युग परिवर्तन का, भावनात्मक नवनिर्माण का आधार यह आत्मवाद ही हो सकता है। युग निर्माण परिवार के परिजनों को अपनी आस्थाएँ आत्मदर्शन के आधार पर विनिर्मित एवम् विकसित करनी चाहिए।

आत्मा का परिष्कृत रूप ही परमात्मा है। हम अपनी मलीनताओं को तिलाञ्जलि देकर अधिकाधिक परिष्कृत और उदात्त बनें और अपूर्णताओं से विरत होकर पूर्णता का आनन्द लाभ करें, यही अपना लक्ष्य होना चाहिए। इसमें किसी अन्य ईश्वर को, किसी अन्य आधार पर प्रसन्न करने की जरूरत नहीं पड़ती, वरन् आत्मनिरीक्षण एवं आत्मशोधन पर ही ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है। अन्तःकरण कितना उत्कृष्ट एवं उदात्त बना इसी कसौटी पर आत्मिक प्रगति की परख करनी पड़ती है।

हमें आत्मगौरव की रक्षा को परमात्मा के सम्मान की रक्षा के रूप में देखना चाहिए और आन्तरिक गरिमा पर आँच न आने देकर अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लेना चाहिए। ऊँचां उठने के लिए ऊँचे आदर्श अपनाने पड़ते हैं। हमारी भावनाएँ आत्मा के, परमात्मा के गौरव को सुरक्षित एवं सुविकसित रखने के लिए सब कुछ कर गुजरने की निष्ठा के साथ सुसम्बद्ध रहनी चाहिए।

हम कोई ऐसा काम न करें जिसमें अपनी अन्तरात्मा ही अपने को धिक्कारे। इस तथ्य का निरन्तर ध्यान बनाये रखा जाए। अपनी क्षमताएँ और दुष्टताएँ दूसरों से छिपाकर रखी जा सकती हैं, दूसरों को झुठलाया और भ्रमाया जा सकता है, पर अपने आप से कुछ छिपाया नहीं जा सकता। दूसरे तो किसी भी भय या प्रलोभन से अपने दोषों को सहन कर सकते हैं। पर आत्मा तो वैसा क्यों करेगा? आत्म-धिक्कार, आत्म-प्रताड़ना, आत्म-असन्तोष, आत्म विद्रोह मानवी-चेतना को मिलने वाला सबसे बड़ा दण्ड है। शरीर को दर्द, चोट, ताप आदि से कष्ट होता है। मन को शोक, अपमान, घाटा, विछोह आदि से दुःख होता है। पर आत्मा को तिलमिला देने वाली पीड़ा तो आत्मधिक्कार के रूप में ही सहनी पड़ती है।

अपना कर्त्तव्य, अपना चिन्तन, अपना स्तर-अपनी ही आत्मा के सामने तो स्पष्ट रहता है। उससे कुछ कैसे छिप सकता है? फिर यह भी स्पष्ट है कि शुद्ध, बुद्ध और निरञ्जन ईश्वर का प्रतीक प्रतिनिधि होने के कारण वह निष्पक्ष न्यायाधीश की भूमिका ही सम्पन्न करता है और अनाचार को सहन न करके आत्मधिक्कार की प्रचण्ड प्रताड़ना से सारा व्यक्तित्व हिल जाता है और मनुष्य हर घड़ी बेतरह काँपता रहता है। इस कँपकँपी की प्रतिक्रियाएँ शारीरिक,

मानसिक, पारिवारिक, सामाजिक स्तर में अगणित उद्वेग बनकर सामने आती हैं। मनुष्य को कहीं चैन नहीं मिलता। हर घड़ी उचटा-उचटा, उद्विग्न और अशान्त रहता है। साधन कितने ही अधिक क्यों न हों। लगता है उसका कुछ छिन गया, कुछ खो गया, कुछ भूल गया, कहीं भटक गया और किसी भारी विपत्ति के जंजाल में वह फँस गया।

बाहर से इस अशान्ति का कोई कारण नहीं दीखता पर भीतर की बेचैनी, अविश्रान्ति इतना उद्वेग उत्पन्न करती है, मानो किसी ने लगातार भगाया, दौड़ाया हो, मुद्दतों से सोने का अवसर न मिला हो। अगणित शारीरिक और मानसिक रोग इस आत्मधिक्कार की प्रताड़ना से ही उत्पन्न होते हैं। इस आत्मदण्ड से पीड़ित व्यक्ति प्रचुर साधन सम्पन्न होते हुए भी निरन्तर व्याकुल-बेचैन रहता है।

मरने के बाद स्वर्ग-नरक मिलने, न मिलने की बात पर सन्देह किया जा सकता है, पर घृणित जीवनक्रम अपनाये हुए व्यक्ति की आत्मप्रताड़ना को प्रत्यक्ष देखा जा सकता है और उसकी प्रतिक्रिया कितने उद्वेग, अवरोध बनकर सामने खड़ी होती है, इसको कभी भी, कहीं भी, अनुभव किया जा सकता है। यह नरक जीवित स्थिति में ही हर घड़ी भुगतना पड़ता है। अपना आपा ही आदमी को इतना डरावना लगता है, मानो हजार यमदूतों का प्रतीक बनकर वह असंख्य नरकों को ऊपर उलीचने के लिए आतुर खड़ा हो।

आत्मदर्शन इन्हीं तथ्यों की ओर प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान आकर्षित करता है और इंगित करता है कि छोटे-छोटे इन्द्रियलिप्सा जन्य लोभ, मोह के आकर्षणों से प्रेरित, अवांछनीय गतिविधियों से बचा ही जाना चाहिए। अहंताजन्य ईर्ष्या और एषणाओं के लिए

व्याकुल नहीं रहना चाहिए। अपनी आँख में अपना सम्मान जिससे बढ़ सके, अन्त:करण में निवास करने वाला परमात्मा जिससे सन्तुष्ट और सहमत हो सके, ऐसे ही क्रियाकलाप अपनाने चाहिए, ऐसा ही दृष्टिकोण विकसित करना चाहिए। आत्म-दर्शन को यदि सचमुच अपनाया गया होगा, तो आत्मशोधन और आत्मपरिष्कार की प्रबल उत्कण्ठा अन्त:करण में उठ खड़ी होगी। उसे किसी भी कारण से अवरुद्ध नहीं किया जा सकेगा।

आत्मगौरव की माँग है कि शानदार जीवन जिया जाय। शानदार सोचा और शानदार किया जाय। देश की आन-बान, शान पर सब कुछ निछावर करने वाले स्वाभिमानी, सेनानायकों से कम नहीं, वरन् बढ़कर आत्मवादी होता है। उसको आत्मा की, परमात्मा की, शान की चिन्ता रहती है। इसकी इज्जत बनाए रखने के लिए उसे बड़ा त्याग करने में हिचक नहीं होती।

आत्मवादी न दुष्ट हो सकता है न कुकर्मी। न छल कर सकता है, न प्रपञ्च रच सकता है। निकृष्ट चिन्तन से भी उसे घोर घृणा होती है। मस्तिष्क भगवान् विष्णु का क्षीर सागर, शिव का कैलाश, मानसरोवर और ब्रह्मा का ब्रह्मलोक है। ऐसे पवित्र स्थान में पिशाच और चाण्डाल जैसे दुष्ट-दुर्भावों का क्या काम? अनैतिक और पतनोन्मुख विचारों को ऐसे देव स्थान में गन्दगी बिखेरने का अवसर कैसे दिया जा सकता है? आत्मभाव की भूमिका में जीवित मनुष्य इस दिशा में पूर्णतया सजग और सतर्क रहता है।

व्यक्तिगत जीवन में जिस उच्चस्तरीय 'शुचिता' का समावेश भावनात्मक नव-निर्माण में प्रधान रूप में रचा गया है, उसकी स्थापना पुष्टि और परिपक्वता आत्मदर्शन की प्रौढ़ता के साथ जुड़ी

है। हममें से प्रत्येक को आत्म-गौरव की, आत्मसम्मान की, आत्म-परिष्कार की, आत्म साक्षात्कार की चेष्टा करनी चाहिए। आत्मसम्मान के नाम पर कई बार ओछे स्तर का अहंकार विदूषक जैसा वेष बनाकर सामने आ खड़ा होता है। हमारा अहंकार वस्तुओं और परिस्थितियों को खोजता है और उनके आधार पर रुष्ट, तुष्ट होता है, जबकि आत्म-गौरव आन्तरिक स्तर पर-गुण, कर्म, स्वभाव के स्वरूप पर, आकांक्षाओं और विचारणाओं की दिशा पर आधारित रहता है। जिसकी अन्त:भूमिका उज्ज्वल है उसे बाह्य परिस्थितियों से कुछ लेना-देना नहीं रह जाता। उसे भौतिक जीवन की सफलता, असफलताएँ प्रभावित नहीं करती। सम्पदाएँ नहीं आन्तरिक विभूतियाँ उसकी सन्तुष्टि का केन्द्र रहती हैं। अहंकारी व्यक्ति जहाँ बाह्य प्रतिकूलताएँ देखकर ही असन्तुलित और रुष्ट-असन्तुष्ट होने लगता है, वहाँ आत्मवादी को आन्तरिक स्तर की उत्कृष्टता ही परिपूर्ण सन्तोष दे सकने के लिए पर्याप्त प्रतीत होती है।

आत्मवादी अपने शरीर, मन और व्यवहार को ऐसा उज्ज्वल, उत्कृष्ट बनाने में लगा रहता है, जिससे इस कायकलेवर में निवास करने वाले आत्मा का गौरव बढ़ता हो। शरीर स्वच्छ, वस्त्र स्वच्छ, उपकरण स्वच्छ, घर स्वच्छ, उसका निवास और प्रभाव जहाँ भी रहेगा, वहाँ स्वच्छता की प्रतिष्ठापना के लिए निरन्तर प्रयास चल रहा होगा। आन्तरिक स्वच्छता जहाँ होगी, वहाँ बाह्य स्वच्छता भी छाया की तरह साथ रहेगी। गन्दगी से जुड़े रहना मनुष्य के स्तर पर लगने वाली लाँछना है। इसे कोई स्वाभिमानी क्यों सहन करेगा?

सृष्टि का हर काम पूर्ण व्यवस्था और क्रमबद्धता के साथ चल रहा है। सूर्य नियत समय पर उगता-डूबता है। मनुष्य की दिनचर्या

नियमित और नियन्त्रित होनी चाहिए। उसे एक क्षण भी अस्त-व्यस्त स्थिति में नहीं गुजारना चाहिए। ईश्वर प्रदत्त सबसे प्रधान सम्पदा के रूप में जीवन के क्षण ही तो मिले हैं, इनमें से एक क्षण भी बर्बाद नहीं होना चाहिए। समय का पूरा-पूरा सदुपयोग किया जाना चाहिए। अस्त-व्यस्तता के लिए, आलस्य, प्रमाद के लिए कहीं कोई गुंजाइश नहीं रहनी चाहिए। हर काम क्रमबद्ध, योजनाबद्ध, व्यवस्थित और कलात्मक, सम्पूर्ण मनोयोग के साथ किया हुआ होना चाहिए। आत्मवाद की मान्यता कहाँ कितनी गहरी है, इसे किसी की कार्यपद्धति में सतर्कता और सजगता के समावेश के रूप में देखा-परखा जा सकता है। उसमें आलस्य, प्रमाद के लिए, लापरवाही और उपेक्षा के लिए कहीं रत्ती भर भी गुंजाइश न मिलेगी।

हर किसी से मधुर भाषण, नम्र व्यवहार, शिष्टता और शालीनता का समुचित समावेश, हर किसी का आदर, चेहरे पर सन्तोष और उल्लास व्यक्त करती रहने वाली अनवरत एवं अभ्यस्त हल्की मुसकान को देखकर यह जाना जा सकता है कि आत्मवाद का रंग कितना गहरा चढ़ा है। सज्जनता, सादगी और संजीदगी की मात्रा के अनुरूप किसी के अन्त:करण का स्तर गिरा या उठा हुआ नापा जा सकता है। विरोध और मतभेद में भी अनौचित्य के साथ ही लड़ाई को सीमित रखने की, व्यक्ति के नाते हर किसी का सम्मान करने की कला जिसे आ गई, समझना चाहिए अपनी और दूसरों की आत्मा के सम्मान सुविधा की आवश्यकता का तथ्य जान लिया गया।

आत्मगौरव और कर्त्तव्यनिष्ठा परस्पर अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है। मनुष्य के कन्धे पर अनेक कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व रखे गए हैं। नागरिक कर्त्तव्यों का पालन हर किसी के लिए आवश्यक है।

स्त्री, बच्चे, माँ-बाप, भाई-बहिन, मित्र, पड़ोसी, सेवक, स्वामी सभी के प्रति अपने कुछ कर्त्तव्य हैं। समाज के प्रति जिम्मेदारियाँ हैं। इन सबको सही ढंग से निबाहने पर ही आत्मगौरव की रक्षा हो सकती है। मर्यादाओं का पालन किया ही जाना चाहिए। पशु प्रवृत्तियों और कुसंस्कारों पर नियन्त्रण रखना ही चाहिए। अधिकारों के लिए उतना बेचैन नहीं होना चाहिए जितना कि कर्त्तव्य पालन में भूल न होने देने के लिए। दूसरे लोग क्या करते हैं? उनने क्या बदला चुकाया और लेखा-जोखा लेने की अपेक्षा इतना सोचना ही पर्याप्त है कि हमने अपना कर्त्तव्य पूरा किया या नहीं? दूसरे भूल करते हैं तो उनसे अपनी तुलना क्या? आत्मवादी को आदर्श बनना पड़ता है, ताकि दूसरों को अनुकरण का उदाहरण और सन्मार्ग पर चलने का प्रकाश अवलम्बन, आधार मिल सके।

आत्मवादी हराम की, अनीति की कमाई नहीं खा सकता। पाप का पैसा खाने से भूखा मरना अच्छा। यह सिद्धान्त जिसने अपना लिया वह न्यायोचित उपलब्धियों में ही गुजारा करने की व्यवस्था बनाता है, दुनिया में बहुत लोग गरीबी का जीवन जीते हैं। रूखा-सूखा खाकर, फटा-टूटा पहनकर ईमानदारी का जीवन जीने में आत्मवादी की शान है। वह बेईमानी की, हराम की, चोरी, चालाकी की कमाई की ओर निगाह उठाकर भी नहीं देखता। न उसे जुआ खेलना आता है, न सट्टा-लाटरी लगाने को मन चलता है। बीसों उँगलियों की-पूरे परिश्रम की, खरी कमाई खाकर जिस स्तर का भी रहन-सहन रखा जा सके, वह उतने में ही बादशाहों जैसी शान समझता है। उचक्के लोग अय्याशी का ठाठ-बाट बनाए फिरते हैं, उससे उसे न ईर्ष्या होती है, न इच्छा। ईमानदारी की कमाई अपने

आप में इतनी शानदार है कि उसके लिए चने चबाकर और टाट ओढ़कर जीना पड़े, तो उसे अपने लिए शान और सम्मान भरा उपहार ही मानना चाहिए।

आत्मनिष्ठ का जीवन उसकी निष्ठा का सूचना पट होता है। बेईमानी की कमाई से जो वैभव प्रदर्शन किया जाता है, वह एक तरह से अपनी अनैतिकता की सार्वजनिक घोषणा है। कोई सुप्तात्मा ही अपने बेईमान होने के इस सूचना पट को लगाकर प्रसन्न हो सकता है। आत्मवादी इसके लिए ललचाना तो दूर, उस ओर फूटी आँख देखना भी पसन्द न करेगा। उसे तो आत्मा का वर्चस्व बढ़ाने वाली हर क्रिया रुचिकर लगेगी। न वह भौतिकता की आकांक्षा करेगा और न उससे प्रभावित होगा। उसे कुछ प्राप्त भी हो जायेगा, तो किसी आवश्यकता युक्त व्यक्ति की ओर ही उसे बढ़ा देगा।

आत्मवाद की प्रेरणा है, आत्मगौरव की रक्षा। कहना न होगा कि आत्मगौरव, ईमानदारी, कर्त्तव्यनिष्ठा, सज्जनता और सुव्यवस्था से भरे जीवनक्रम के साथ जुड़ा हुआ है। हमें ऐसा ही जीवनक्रम स्वयं अपनाना चाहिए और ऐसी ही आस्था अपने परिवार प्रभाव क्षेत्र में उत्पन्न करनी चाहिए। -वाङ्मय-६६,१.२०-२३

यदि विचार बदल जाएँगे तो कार्यों का बदलना सुनिश्चित है। कार्य बदलने पर भी विचारों का न बदलना सम्भव है, पर विचार बदल जाने पर उनसे विपरीत कार्य देर तक नहीं होते रह सकते। विचार बीज हैं, कार्य अंकुर, विचार पिता हैं, कार्य पुत्र। इसलिए जीवन परिवर्तन का कार्य विचार परिवर्तन से आरंभ होता है। जीवन-निर्माण का, आत्म-निर्माण का अर्थ है-'विचार-निर्माण।' -वाङ्मय-६६,२.१९

इस अभियान के साधन यों जुटेंगे

छोटी-सी इमारत बनाने के लिए ईंट-चूने की, लोहा-लकड़ी की, पूँजी-श्रम एवं कौशल की आवश्यकता पड़ती है। फिर विश्व के नवनिर्माण जैसे अत्यन्त विशाल काम के प्रयोजनों को पूरा करने के लिए भी साधनों की तो आवश्यकता पड़ेगी ही। इन्हें कहाँ से जुटाया जायेगा, कैसे जुटाया जायेगा? इस प्रश्न पर योजना के निर्माताओं ने पहले ही विचार कर लिया है।

युग निर्माण परिवार के परिजनों द्वारा इस आन्दोलन का आरंभ किया गया है और उसे अग्रगामी बनाया जा रहा है। अस्तु, उनके ऊपर ही यह उत्तरदायित्व भी डाला गया है कि वे अपनी श्रद्धा, सद्भावना, सहानुभूति की भाव प्रक्रिया को व्यवहार क्षेत्र में विकसित करें। अपने श्रम का एक अंश और अपनी आजीविका का एक भाग इस महान् मिशन के लिए नियमित रूप से समर्पित करते रहने का व्रत ग्रहण करें। इसे इस भाव भरे विशाल परिवार द्वारा सहर्ष स्वीकारा भी गया है। उसी अनुदान का परिणाम है कि अब तक इतना आशाजनक और उत्साहवर्द्धक रचनात्मक कार्य संभव हो सका है।

दूसरा द्वार विभूतिवानों का खटखटाया जा रहा है। भावनाशील लोगों से कहा जा रहा है कि यदि उनकी अन्तरात्मा में मानव जीवन की महत्ता के अनुरूप कुछ उच्चस्तरीय कार्य करने की आकांक्षा जाग्रत् हो रही है, आत्मा यदि ईश्वर के सान्निध्य, साक्षात्कार को तड़प रही है, तो उन्हें इस विशाल विश्व को प्रभु की, साकार भगवान् की अपने श्रम बिन्दुओं से अर्चना करनी चाहिए। अपने देश में भावनाओं की कमी नहीं, त्याग बलिदान से लेकर पुण्य-परमार्थ तक के प्रयोजनों के लिए बहुत कुछ किया जाता रहता है। पर

दुर्भाग्य यही है कि उस भावनात्मक विभूति को दिशा नहीं मिली। अपने देश में ८४ लाख साधु-महात्मा हैं। ७ लाख गाँव हैं। एक गाँव पीछे बारह साधुओं का औसत आता है। यदि वे इस क्रम से बिखर जायें और योजनाबद्ध होकर कार्य करें, तो आलस्य, प्रमाद, व्यसन, अपराध, अनाचार एवं अनैतिकता, मूढ़-मान्यता, निरक्षरता, सामाजिक कुरीतियों व परम्पराओं का सहज ही उन्मूलन कर सकते हैं। इतने अधिक लोक-सेवियों की सहायता से राष्ट्र का कायाकल्प हो सकता है।

युग निर्माण योजना ने इस भावुक वर्ग के हर पक्ष से गृही और विरक्त, उदार सहृदय व्यक्तियों को झकझोरा है कि वे अपनी उदात्त भावनाओं का सदुपयोग करें। अपनी सहृदय सद्भावना से नर नारायण को लाभान्वित होने दें। दरिद्र नारायण को उनकी उदार सद्भावना की स्नेहसिक्त सहायता मिल सके, इसका प्रयास करें।

इसी प्रकार विद्या विभूति से सम्पन्न लोगों से कहा गया कि उनकी मस्तिष्कीय उपलब्धियाँ उन्हीं के लिए सीमित न रहें, वरन् समाज का पिछड़ापन और व्यक्ति का अध:पतन रोकने के काम आयें। प्रतिभावानों को चुनौती दी गई है कि वे अपनी चतुरता एवं कुशलता का परिचय नव निर्माण के कर्मक्षेत्र में प्रस्तुत करें। अपने व्यक्तित्व की विशेषता को, धैर्य, साहस, शौर्य को इस कसौटी पर चढ़ने दें कि उन्होंने अपने बलबूते पर सृजन अभियान में क्या योगदान दिया और अपने प्रभाव से कितनों को इस प्रयोजन में लगाया। धनवानों से अनुरोध किया है कि वे बेटे से पोतों को सात पीढ़ियों तक ब्याज-भाड़े की कमाई खाने और अमीरों के गुलछर्रे उड़ाने की योजना बनाना बन्द करें। संग्रह से बाज आयें। विलासिता

और अहंता से हाथ रोकें। कमाई का एक अंश युग की सबसे बड़ी आवश्यकता के लिये, भावनात्मक नवनिर्माण के लिए प्रस्तुत करें। स्वर्ग के लिये, यश के लिए नहीं मानवी महानता का अग्रिम वर्द्धन करने के लिए बढ़-चढ़कर अनुदान प्रस्तुत करें, यत्किंचित देकर दान लकीर न पीटें।

कलाकारों को कहा गया है कि उनमें साहित्य निर्माण की, काव्य रचना की, मधुर स्वर की, गायन की, मूर्तिकला और चित्रकला जैसी विशेषताएँ हैं, तो उसका उपयोग जनमानस में उदात्त भावनाएँ उभारने के लिए करें।

प्रसन्नता की बात है कि यह उद्बोधन निरर्थक नहीं जा रहा है। विभूतिवान् वर्ग को यह अनुभव करने का अवसर मिला है कि उन्हें जो अतिरिक्त विशेषताएँ ईश्वर ने प्रदान की हैं, उनकी सार्थकता इसी में है कि वे वंश, धर्म, समाज और संस्कृति के पुनरुत्थान को संभव बनाने वाले इस व्यापक अभियान में भाग लेकर अपनी विभूतियों का श्रेष्ठतम सदुपयोग करें। आशा की जानी चाहिए कि यथार्थता की उपयोगिता को अगले दिनों समझा जायेगा और विभूतिवान् वर्ग आगे आकर अभियान की आवश्यकता अपने सहज अनुदान से पूरा करेगा।

युग निर्माण परिवार के परिजनों का वर्ग आरम्भ से ही काम कर रहा है। विभूतिवानों को खटखटाया और जगाया जा रहा है। आग्रह-अनुरोध के अतिरिक्त उन्हें यह भी कहा जा रहा है कि भावना, विद्या, प्रतिभा सम्पति, कला यह पाँचों ही विभूतियाँ भगवान् की विशेष अमानतें हैं, उन्हें यदि लोक-मंगल में प्रयुक्त करने में कृपणता की और अपने हेय स्वार्थों की पूर्ति में ही उनको लगाते रहे,

तो प्रकारान्तर से यह एक अपराध होगा, जिसका दण्ड उन्हें जनता की ओर से भगवान् की अदालत में भुगतना पड़ेगा। अनुरोध कारगर न हुआ, तो अगले ही दिनों यह भी कहा जाएगा कि वह इन अपराधों को सुधारने के लिए कारगर उपाय अपनाएँ। यद्यपि अभी यह असमंजसपूर्ण क्षेत्र है, पर विश्वास किया गया है कि नवनिर्माण के अभियान में देर-सबेर में विभूतियों का उपयोग किया जा सकेगा। इस दिशा में प्रगति भी हो रही है।

तीसरा वर्ग जनता का है। उसे भी नवनिर्माण के लिए आवश्यक योगदान करने के लिए कहा गया है। आरम्भ में केवल युग निर्माण परिवार के सदस्य न्यूनतम अनुदान के रूप में एक घंटा श्रमदान और दस पैसे का अनुदान दे रहे हैं। यही कदम उठाने के लिए सर्वसाधारण को कह रहे हैं। इस आन्दोलन से प्रभावित हर व्यक्ति को नवनिर्माण के लिए समय दान-श्रमदान किसी न किसी रूप में करना ही चाहिए। अब भगवान् गंगाजल, गुलाबजल और पंचामृत से स्नान करके सन्तुष्ट होने वाले नहीं हैं। उनकी माँग श्रम बिन्दुओं की है। अब भगवान् का सच्चा भक्त वह माना जायेगा, जो पसीने की बूँदों से उन्हें स्नान कराये। नवनिर्माण के लिये अपना शारीरिक श्रम नित्य-नियमित रूप से करते रहने का व्रत ले।

इसी प्रकार जनसाधारण को यह कहा जा रहा है कि अपने परिवार का सदस्य 'नवयुग' अवतरण अनुष्ठान को भी मान लेना चाहिए। घर में, परिवार में यदि पाँच व्यक्ति हैं तो छठा नवनिर्माण समझा जाना चाहिए और एक बढ़े हुए सदस्य के भरण-पोषण में जो खर्च पड़ता है, वह युग परिवर्तन के लिए प्रस्तुत करना चाहिए। यह प्रवृत्ति तब पनपेगी जबकि हर व्यक्ति यह अनुभव करेगा कि उसके

शारीरिक, पारिवारिक उत्तरदायित्व में ही एक समाज के नवनिर्माण का प्रयोजन भी जुड़ा हुआ है। तब मात्र मौखिक चर्चा तक वह सीमित न होगा, वरन् उस दिशा में कुछ शुरू करेगा। करने के लिए तो काम यह है कि हर भावनाशील व्यक्ति को अपने श्रम बिन्दुओं का, अपनी आजीविका के एक अंश का अनुदान नियमित रूप से प्रस्तुत करना चाहिए।

विश्वास किया गया है कि यह प्रवृत्ति जनसाधारण में निश्चित रूप से पनपेगी और जब वह पनपेगी तो नव-निर्माण के विशालकाय अभियान में काम आने वाले साधन सहज ही जुटते चले जायेंगे। व्यक्ति विशेष का बड़े से बड़ा अनुदान तुच्छ है। जनता का एक बूँद अनुदान इकट्ठा होकर वह समुद्र के बराबर बन सकता है, कोटि-कोटि जन-साधारण का एक-एक रज कण एकत्रित होकर एक बड़ा पहाड़ बन सकता है। जनशक्ति को विश्व की महानतम शक्ति कह सकते हैं। जहाँ वह है वहाँ किसी भी वस्तु की कमी नहीं रह सकती। जहाँ यह नहीं है वहाँ बहुत कुछ होते हुए भी कुछ नहीं है, यह मानना होगा।

युग निर्माण आन्दोलन की संरचना के लिये आवश्यक साधन जुटाने के लिए जो आधार सोचे गये हैं, प्रयुक्त किये गए हैं तथा जिन पर आशा केन्द्र स्थिर किये गए हैं इनमें (१)युग निर्माण परिवार के परिजनों द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले समयदान तथा नियमित अनुदान, (२) विभूतिवान् आत्माओं के संभावित सहयोग को (३) जनसाधारण के श्रमदान तथा अपने परिवार में एक नया सदस्य नवयुग अभियान मानने को प्रधानता दी गई है और यह आशा हो गई है कि इन तीन आधारों पर वे सभी साधन जुटाये जा सकेंगे, जिनकी युग परिवर्तन के लिए आवश्यकता पड़ेगी। -वाङ्मय-६६.१.२८-३०

परिवार जीवन विकास की प्रयोगशाला

अपने आपको ढालने, बदलने, बनाने की सर्वोत्तम प्रयोगशाला है-अपना परिवार। अपने आपे के बाद अपना सबसे बड़ा प्रभाव क्षेत्र अपना परिवार ही होता है। उसके प्रति अपना कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व भी जुड़ा रहता है। इसलिए आत्मनिर्माण और परिवार निर्माण को एक साथ मिलाकर भी चला जा सकता है।

तैरना सीखने के लिए तालाब चाहिए। निशाना साधने के लिए बंदूक, पढ़ने के लिए पुस्तक चाहिए और वैज्ञानिक प्रयोगों के लिए प्रयोगशाला। यों अपनी आस्थाएँ, मान्यताएँ एकाकी भी बनाई, बदली जा सकती हैं। पर वे खरी उतरी कि नहीं, परिपक्व हुई कि नहीं? इसका परीक्षण भी होना चाहिए। इसके लिये उपयुक्त कसौटी परिवार ही हो सकता है। फिर वह ईश्वर का सींचा हुआ एक बगीचा भी है। उसे कर्मठ और कुशल माली की तरह सँभाला-सँजोया जाना भी है। विश्व-मानव के चरणों में मनुष्य अपनी श्रेष्ठतम श्रद्धांजलि एक सुसंस्कृत परिवार के रूप में ही तो प्रस्तुत करता है। परिवार निर्माण की प्रक्रिया जहाँ पुनीत उत्तरदायित्व का निर्वाह करती है वहाँ आत्म-निर्माण का पथ प्रशस्त करने में भी असाधारण रूप से सहायक होती है।

जल्दी सोने और जल्दी उठने की आदत स्वास्थ्य संरक्षण से लेकर प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त्त में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य निपटाने का अवसर पाने तक अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। संसार के जितने भी कुकर्म, अनाचार होते हैं, उनमें ७० प्रतिशत रात्रि के प्रथम प्रहर में होते हैं। वह समय जागने का नहीं। सिनेमा, शराब, व्यभिचार, जुआ, गप-शप आदि का दौर इसी प्रहर में होता है। यदि यह आध्यात्मिक विपत्ति का समय सोकर व्यतीत कर दिया जाये, तो

अधिकांश बुराइयों से छुटकारा मिल जाता है और प्रात:काल का ब्रह्ममुहूर्त्त उपासना, विद्याध्ययन, व्यायाम आदि किसी भी उपयोगी कार्य में लगाया जा सकता है। इस संदर्भ में जैन धर्म की परम्परा बहुत ही प्रशंसनीय है कि सूर्य डूबने से पहले भोजन करके निवृत्त हो जाया जाये। इसी में एक कड़ी हमें और जोड़ देनी है कि यथा सम्भव अधिक रात व्यतीत किये बिना जल्दी ही सो भी जाया जाये।

रात्रि में भोजन के बाद ज्ञान वृद्धि का सात्विक मनोरंजन चलना चाहिए, सारे परिवार को इकट्ठा करके विचार गोष्ठी चलाई जाये। घर के शिक्षितों में क्रमश: एक-एक दिन घण्टा या आधा घण्टा सत्साहित्य पढ़कर सुनाया करें और शेष सब लोग सुना करें। युग निर्माण साहित्य में इस प्रयोजन के लिए कितनी ही पुस्तकें बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। पत्रिकाओं में समाचार प्रसंग, संस्मरण तथा जीवन वृतान्त छपते हैं और भी कितने ही जीवनोपयोगी विषय रहते हैं। उन्हें पढ़ने और सुनने की पद्धति चल पड़े तो एक प्रकार से स्वाध्याय और सत्संग की आवश्यकता सहज ही पूरी होती रहेगी। कुछ ही दिन में इसका प्रभाव दीखने लगेगा और प्रतीत होगा कि इस भावनात्मक आहार को पाकर हर एक का अन्त:करण कितना विकसित हो रहा है। अपना नित्य का स्वाध्याय इसी प्रायोजन से जुड़ा रह सकता है। पढ़ने-सुनने के बाद प्रश्नोत्तर का क्रम अपनाया जाये।

परिवार को सुन्दर और सुव्यवस्थित बनाने में घर के हर सदस्य को अपना योगदान देने का अवसर नित्य मिलता रहे। घर की सफाई, पुताई, फर्नीचर, साज सँभाल रंग-रोगन, कपड़े धोना, टूटी चीजों की मरम्मत, पुस्तकों की जिल्दें, हर वस्तु को नियत

स्थान पर जमाना जैसे कार्यों में छोटे-बड़े सबको कुछ न कुछ समय देना चाहिए। घर में कृषि, पशुपालन, गृह उद्योग जैसे कुछ काम चलते हों, तो उसमें भी हाथ बटाने का, बाल-वृद्ध सबका यथासम्भव योगदान रहना चाहिए। घर में कुछ लोग बिस्तर घिसते रहें, कुछ मटरगस्ती करें, यह बहुत ही बुरा तरीका है। परिवार के प्रत्येक समर्थ सदस्य को यह अनुभव होना चाहिए कि उस परिवार में उसके भी कुछ कर्त्तव्य उत्तरदायित्व हैं। उसके विकास में उसका भी योगदान है। इस दृष्टि से श्रमदान की एक क्रमबद्ध व्यवस्था रहनी चाहिए।

स्वच्छता और सौन्दर्य, सुसज्जा, सुव्यवस्था, शालीनता परिवार की शान है। गन्दगी की छोटी-छोटी दुर्बलताओं पर बारीक नजर रखनी चाहिए और जहाँ कहीं आलस्य, प्रमाद, फूहड़पन बरता जा रहा हो, उसे हटाने में मिठास और सहयोग के साथ कार्य करना चाहिए। छोटों को बड़ों के साथ अशिष्टता बरतना जिस प्रकार हेय माना जाता है, ठीक वैसी ही परम्परा किसी सभ्य परिवार में बड़ों द्वारा छोटों के प्रति भी निबाही जानी चाहिए। अनुचित आचरणों या भूलों के लिए कहा सुना, समझाया, रोका जाना चाहिए, पर उसमें सज्जनता, नम्रता, शालीनता का समुचित पुट बना रहे इसका पूरा ध्यान रखा जाय। किसी का भी अपमान न किया जाये, किसी के भी स्वाभिमान को चोट न पहुँचाई जाये, भले ही वह आयु में कितना ही छोटा नितान्त अबोध बालक ही क्यों न हो। 'तू' का उच्चारण असभ्य माना जाये। छोटों को भी 'आप' न सही कम से कम 'तुम' तो कहा ही जाये। कन्या और पुत्र में, बहू और बेटी में किसी प्रकार का अन्तर नहीं होना चाहिए।

परिवार में हर किसी की नियत दिनचर्या होनी चाहिए। समय के विभाजन से कई तरह के कार्य करने का-यहाँ तक कि मनोरंजन और विश्राम का भी पर्याप्त समय मिल जाता है। जिन घरों में अनियमित दिनचर्या चलती है, सोने, जागने, खाने, नहाने का नियत समय नहीं रहता, वहाँ काम जरा-सा होते हुए भी सारा दिन बर्बाद हो जाता है और किसी को कभी अवकाश नहीं मिलता।

सामूहिक प्रार्थना प्रातः और सायं काल अथवा दोनों में से एक समय अवश्य ही निर्धारित रहनी चाहिए। सामूहिक गायत्री जप का उच्चारण कोई सुन्दर-सी भावपूर्ण प्रार्थना सब लोग मिलकर गाएँ। युग निर्माण सत्संकल्प का नित्य पाठ करें।

घर में हर किसी को सादगी और मितव्ययिता का पाठ पढ़ाया जाना चाहिए। चटोरापन, फिजूलखर्ची, उद्धत शृंगार, गाली-गलौज जैसी बुरी आदतें बच्चों में भी नहीं पनपने देनी चाहिए। आमदनी और खर्च के हर मद का अनुमानित बजट बना लेना चाहिए और यथासम्भव उसी की मर्यादा में चलना चाहिए। बचत की थोड़ी गुंजाइश रखी ही जानी चाहिए।

बड़ों का आदर करना सभी सीखें। छोटे-बड़ों का चरणस्पर्श पूर्वक अभिवादन किया करें। अपने भाग से अधिक की इच्छा न करें, मिल-बाँटकर खाया जाय, इन छोटी बातों का घर में बारीकी से ध्यान रखा जाए। बड़े बच्चे छोटों को पढ़ाया करें, सँभालने, सुधारने, हँसने खिलाने, घुमाने-फिराने में सहयोग दिया करें। घर का क्रम और वातावरण ही इतना सुन्दर और सुव्यस्थित बनाया जाय कि घर में घुसते ही सारी थकान दूर हो जाय और फिर सिनेमा आदि के लिए भागने की कोई आवश्यकता ही प्रतीत न हो।

छोटे-मोटे खेल-विनोदों के साथ संगीत का अभ्यास यदि घर में चल पड़े और गीत-वाद्य का शौक लग सके तो समझना चाहिए, सरसता घर में बिखर ही पड़ेगी। बच्चों को साथ लेकर पार्क आदि में घूमने जाना, किसी त्यौहार आदि पर पिकनिक मनाना, घर के वातावरण को बहुत ही उल्लास पूर्ण बना देता है।

घर में हर किसी को स्वावलम्बी और सुसंस्कारी बनाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया जाए। लाड़-चाव में किसी को भी फिजूलखर्ची की आदत न डालने दी जाय। बच्चों के मन पर यह संस्कार नहीं पड़ने देना चाहिए कि हमारे लिए जन्म भर के लिए हराम की कमाई खाने को छोड़ा जाएगा और हम बैठे गुलछर्रे उड़ाया करेंगे। इस प्रकार की आशा बच्चों को दिलाना या परिस्थिति बनाना संतान की नैतिक हत्या कर डालने के बराबर है। बच्चों को प्यार खूब दिया जाए पर स्वावलम्बन का अभ्यास भी कराया जाना आवश्यक है।

इस प्रकार की परम्पराएँ घर में डालने वाले गृहपति को अपने ऊपर अनेक नियन्त्रण, प्रतिबन्ध लगाने पड़ते हैं। अपने को काफी साधना, सुधारना पड़ता है, जिससे आत्मनिर्माण में भारी सहायता मिलती है, परिवार निर्माण का दुहरा प्रयोजन भी साथ-साथ सिद्ध होता चलता है। -वाङ्मय-६६,१.२३-२५

युग निर्माण परिवार के सदस्य इस भाँति सोचें

सार्वजनिक जीवन में कई लोग कई उद्देश्यों से प्रवेश करते हैं। कुछ सचमुच ही आत्मकल्याण और परमार्थ प्रयोजन का लक्ष्य सामने रखकर लोक-मंगल के पुण्य क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। कुछ को धन अथवा यश कमाने की इच्छा रहती है, इसलिए सेवा एवं परमार्थ परायणता की खाल ओढ़कर लोकसेवी बनने का आडम्बर बनाते हैं। युग निर्माण परिवार के परिजनों को उथले स्तर पर खड़े होकर इस क्षेत्र में प्रवेश करना शक्य न होगा।

हमें समझना चाहिए कि भौतिक उद्देश्य के लिए यह युग निर्माण अभियान नहीं चल रहा है। जन मानस का भावनात्मक नवनिर्माण अपना उद्देश्य है। यह कार्य आत्मनिर्माण से ही आरम्भ हो सकता है। अपना स्तर ऊँचा होगा, तो ही हम दूसरों को ऊँचा उठा सकने में समर्थ हो सकते हैं। जलता हुआ दीपक ही दूसरे दीपक को जला सकता है। जो दीपक स्वयं बुझा पड़ा है, वह दूसरों को जला सकने में समर्थ नहीं हो सकता।

हम आत्मनिर्माण में प्रवृत्त होकर ही समाज निर्माण का लक्ष्य पूरा कर सकेंगे। युग निर्माण परिवार के प्रत्येक सदस्य को अपनी स्थिति अनुभव करना चाहिए। उसे विश्वास करना चाहिए कि उसने दैवी प्रयोजन के लिए यह जन्म लिया है। इस युग संधिवेला में उसे विशेष उद्देश्य के लिए भेजा गया है। उसे शिश्नोदर परायण नर-कीटकों की पंक्ति में अपने को नहीं बिठाना है, उसे लोभ-मोह के लिये नहीं सड़ना-मरना है।

युग पुरुष के चरणों पर इस परिवार को जो भावभरी माला सर्वप्रथम समर्पित की जा रही है, उसका अति महत्त्वपूर्ण मणि

मुक्तक है। उसे ऐतिहासिक भूमिका सम्पादन करने का अवसर मिला है। इस अभियान के संचालकों ने उसे प्रयत्नपूर्वक ढूँढ़ा, सँभाला और भावभरी अभिव्यञ्जनाओं से सींचा-सँजोया है। उसे तुच्छता से ऊँचा उठना और महानता का वरण करना है। इसके लिए अवसर उसके सामने गोदी पसारे, चुनौती लिए हुए सामने खड़ा है। आत्मबोध की दिव्य ज्योति से अपने आपको ज्योर्तिमय बनाया जाना चाहिए। इतिहास जिन युग निर्माताओं की खोज में है, उसे उनकी पंक्ति में बिना आग-पीछा सोचे साहसपूर्वक जा बैठना चाहिए।

युग निर्माण परिवार का प्रत्येक सदस्य आत्मचिन्तन करे, आत्मबोध के प्रकाश से अपना अन्तःकरण आलोकित करे। परिवार की सदस्यता के साथ जुड़े हुए उत्तरदायित्व की गरिमा समझे, तभी वह अपनी समुचित भूमिका सम्पादित कर सकेगा। हमें अपने बारे में इस प्रकार सोचना चाहिए कि जन्म-जन्मान्तर से संग्रहीत अपनी उच्च आत्मिक स्थिति आज अग्नि-परीक्षा की कसौटी पर कसी जा रही है। महाकाल अपने संकेतों पर चलने के लिए बार-बार पुकार रहा है, रीछ-वानरों के पथ पर हमें चलना ही चाहिए। अभियान की संचालक सत्ताएँ बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाए बैठी हैं, उन्हें निराश नहीं करना चाहिए। युग की गुहार जीवित और जाग्रत् सुसंस्कारी आत्माओं का आह्वान कर रही है। उसे तिरस्कृत नहीं किया जाना चाहिए। यह समय ऐसा है जैसा किसी-किसी सौभाग्यशाली के ही जीवन में आता है। कितने व्यक्ति किन्हीं महत्त्वपूर्ण अवसरों की तलाश में रहते हैं, उन्हें उच्चस्तरीय प्रयोजनों में असाधारण भूमिका सम्पादित करने का सौभाग्य मिले और वे अपना जीवन धन्य बनाएँ। यह अवसर युग निर्माण परिवार के सदस्यों के सामने मौजूद है, उन्हें

इसका समुचित सदुपयोग करना चाहिए। इस समय की उपेक्षा उन्हें चिरकाल तक पश्चात्ताप की आग में जलाती रहेगी।

युग निर्माण परिवार के प्रत्येक सदस्य को अपने उच्च-स्तर को, महान् कर्त्तव्य और दायित्व को समझना चाहिए। जो कुछ उसे करना है, उसके शुभारम्भ के रूप में आत्मपरिष्कार के लिए आगे बढ़ना चाहिए। अपने आप को हममें से जो जितना उत्कृष्ट, परिष्कृत बना सकेगा, वह उतनी सफलतापूर्वक अपना उत्तरदायित्व पूरा कर सकेगा। समाज का निर्माण, युग का परिवर्तन हमारे अपने निर्माण एवं परिवर्तन के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। यदि हम दूसरे तथाकथित समाजसेवियों की तरह बाहरी दौड़-धूप तो बहुत करें, पर आत्म-चिन्तन, आत्मसुधार, आत्मनिर्माण और आत्मविकास की आवश्यकता पूरी न करें, तो हमारी सामर्थ्य स्वल्प रहेगी और कुछ कहने लायक परिणाम न निकलेगा। लोकनिर्माण व्यक्ति पर अवलम्बित है और व्यक्तिनिर्माण का पहला कदम हमें अपने निर्माण के रूप में ही उठाना चाहिए।

जिन्होंने युग निर्माण अभियान का घटक परिजन अपने को माना है, उन्हें अपनी वास्तविकता इसी रूप में देखनी, समझनी और स्वीकार करनी चाहिए। भगवान् कुछ करने जा रहे हैं और विश्व की दिशा उलटने वाली है, उसे सर्वनाशी गर्त में गिरने से बचाकर उज्ज्वल भविष्य की दिशा में लौटने के लिए तोड़ा-मरोड़ा जा रहा है।

इन दिनों सूक्ष्म जगत् में दिव्य हलचलें इसी म्तर की हो रही हैं और उनका क्रम तीव्र से तीव्रतर होता जा रहा है, निकट भविष्य में वह तीव्रतम होने जा रहा है। यह मनुष्यकृत आन्दोलन नहीं है, जो आज चले कल ठप्प हो जाए।

जिन लोगों ने इस महाप्रयास में भाग लेने की तड़पन अनुभव की है, उन्हें समझ लेना चाहिए कि यह कोई बहकावा या भाववेश नहीं है। सामयिक उत्तेजना भी इसका कारण नहीं है। यह आत्मा का निर्देश और ईश्वर का संकेत है, उसे उन्होंने एक असाधारण सौभाग्य के रूप में उपलब्ध किया है। ऐसे महान् अवसरों पर अग्रदूत बनने का अवसर हर किसी को नहीं मिलता। रामावतार में जो श्रेय अंगद, हनुमान् और नल-नील को मिला, उससे दूसरों को वंचित ही रहना पड़ा। युग परिवर्तन की अग्रिम पंक्ति में जिन्हें घसीटा या धकेला गया है, उन्हें अपने को आत्मा का, परमात्मा का प्रिय भक्त ही अनुभव करना चाहिए और शान्तचित्त से धैयपूर्वक उस पथ पर चलने की सुनिश्चित तैयारी करनी चाहिए। खींचतान में अनावश्यक समय नष्ट नहीं करना चाहिए।

आत्मा की पुकार अनसुनी करके वे लोभ-मोह के पुराने ढर्रे पर चलते रहे, तो आत्मधिक्कार की इतनी विकट मार पड़ेगी कि झंझट से बच निकलने और लोभ, मोह को न छोड़ने की चतुरता बहुत महँगी पड़ेगी। अन्तर्द्वन्द्व उन्हें किसी काम का न छोड़ेगा। मौज-मजा का आनन्द आत्मप्रताड़ना न उठाने देगी और साहस की कमी से ईश्वरीय निर्देश पालन करते हुए जीवन को धन्य बनाने का अवसर भी हाथ से निकल जाएगा। इस दुहरी दुर्गति से बचना चाहिए। उनके लिए इस विषम वेला में अतिरिक्त कार्य और अतिरिक्त उत्तरदायित्व नियति ने निर्धारित किया है, इसे बिना मन डुलाए सच्चे मन से स्वीकार कर लेना चाहिए और उसी के अनुरूप अपनी-अपनी गतिविधियों का निर्माण करना चाहिए।

युग निर्माण परिवार के हर परिजन को अपने भावी जीवन के लिए एक नियत, निर्धारित दृष्किोण अपनाना चाहिए और सुनिश्चित

कार्यक्रम अपनाना चाहिए। तभी उन्हें शान्ति मिलेगी और वे सन्तोष अनुभव कर सकेंगे।

श्रेयपथ पर चलने वालों की कुछ आस्थाएँ अत्यन्त सुदृढ़ होनी चाहिए। इस परिवार के प्रत्येक सदस्य की मान्यता यह होनी चाहिए कि वह निःसन्देह एक सुसंस्कारी उच्च आत्मा है। जन्म-जन्मान्तरों से चली आ रही आत्मिक प्रगति के कारण ही उसे जीवित, जाग्रत्, भावनाशील, दूरदर्शी और उदात्त अन्तःकरण मिला है। इस दिव्य परिवार में जुड़ जाना भी इसी शृंखला की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

ऐसी ही समर्थ आत्माओं को युग परिवर्तन जैसे चिरकाल में सभी आने वाले महान् दैवी प्रयासों में अग्रदूत की तरह नियत, नियुक्त किया जाता है।

अपनी यह आस्था चट्टान की तरह अडिग होनी चाहिए कि युग बदल रहा है, पुराने सड़े-गले मूल्यांकन नष्ट होने जा रहे हैं। दुनिया आज जिस लोभ-मोह और स्वार्थ-अनाचार से सर्वनाशी पथ पर दौड़ रही है, उसे वापस लौटना पड़ेगा। अन्धपरम्पराओं और मूढ़-मान्यताओं का अन्त होकर रहेगा। अगले दिनों न्याय, सत्य और विवेक की ही विजय वैजयन्ती फहरायेगी। हमें मूढ़ता और दुष्टतावादियों से तनिक भी प्रभावित नहीं होना चाहिए और विश्वास रखना चाहिए कि बदलना उन्हें भी पड़ेगा। महाकाल के हाथ उन्हें करारी चपत लगाने के लिए उठ ही पड़े हैं। हमें अपने को एकाकी, दुर्बल या साधन-हीन नहीं मानना चाहिए, वरन् यह समझकर चलना चाहिए कि पीछे अजेय शक्तियाँ विद्यमान हैं, जो इस महान् अभियान के अपने प्रयासों को पूर्ण सफलता प्रदान करके रहेंगी।

हमारा सुदृढ़ निश्चय होना चाहिए कि यह संसार ही भगवान् का सच्चा स्वरूप है। लोकमंगल के लिए किये गये प्रयास भगवान्

की सर्वोत्तम पूजा है। ईश्वरीय प्यार को प्राप्त करने के लिए अपना आन्तरिक स्तर को परिष्कृत करना ही सर्वश्रेष्ठ तप-साधना है। इन दिनों यही युग साधना है। योग साधनात्मक विशेष तप संचय के लिये अपना एक शक्तिशाली संयन्त्र काम कर रहा है। उसका उपार्जन हम सभी के लिये है। उसमें से जिस-जिस प्रयोजन के लिए जितनी शक्ति की आवश्यकता पड़ेगी, सहज ही मिलती रहेगी। अलग-अलग, छुट-पुट तप-साधना और योगाभ्यास के झंझट में पड़ने का यह समय बिल्कुल नहीं है। एक बड़ी भट्ठी पर सबका भोजन पक रहा है, तो अलग-अलग चूल्हे जलाने की क्या आवश्यकता? इन दिनों आत्मकल्याण का सब से उत्तम माध्यम आत्मनिर्माण और युग निर्माण के महान् अभियान का अंग बनकर काम करना चाहिए।

हमें लोभ और मोह के अवांछनीय अन्धकार से ऊपर उठना ही चाहिए। परिवार के लालन-पालन के लिये शरीर निर्वाह के लिये हमें उचित की सीमा तक ही रहना चाहिए। लोभवश धन कुबेर बनने की आकांक्षा से और अपने स्त्री-बच्चों को राजा-रानी बना जाने की संकीर्ण स्वार्थपरता से ऊपर उठना चाहिए। अपना उत्तरदायित्व आत्मकल्याण का भी है और समाज का ऋण चुकाने का भी। समाज की ओर से विमुख रहकर आत्मिक स्तर की उपेक्षा बरतकर लोभ और मोह में अन्त:चेतना बुरी तरह डूबी हुई है। परमार्थ प्रयोजन में समय, श्रम, मनोयोग एवं सादगी का उपयोग करने में जी धड़कता है, साहस नहीं उठता और कंजूसी आड़े आती है, तो समझना चाहिए कि अपनी वाचालता और विडम्बना में ही प्रगति हुई है। आत्मिक स्तर तो गढ्ढे में ही पड़ा है। ऐसी हेय स्थिति

में हम में से किसी को भी नहीं पड़ा रहना चाहिए। अपनी आधी सम्पदाएँ और विभूतियाँ शरीर निर्वाह और परिवार पालन के भौतिक पथ को और आधी आत्मपरिष्कार, संस्कार, लोक-मंगल के लिये बाँट देना चाहिए। यह बँटवारा न्यायानुकूल है। भौतिकपक्ष के ऊपर सारा जीवन रस टपका दिया जाए और आत्मिक पक्ष एक -एक बूँद के लिये प्यासा मरे, वह जीवन का अत्यन्त दुर्भाग्य और अतीव दु:खात्मक दुर्घटना होगी। हमें नित्य ही लेखा-जोखा लेते रहना चाहिए कि भौतिक पक्ष को हम आधे से अधिक तो नहीं दे रहे हैं। कहीं आत्मिक पक्ष के साथ अन्याय तो नहीं हो रहा है।

हम अकेले चलें। सूर्य-चन्द्र की तरह अकेले चलने में तनिक भी संकोच न हो। अपनी आस्थाओं को दूसरों के कहे-सुने अनुसार नहीं वरन् अपने स्वतन्त्र चिन्तन के आधार पर विकसित करें। अन्धी भेड़ों की तरह झुण्ड का अनुगमन करने की मनोवृत्ति छोड़ें। सिंह की तरह अपना मार्ग अपनी विवेक चेतना के आधार पर स्वयं निर्धारित करें। सही को अपनाने और गलत को छोड़ देने का साहस ही युग निर्माण परिवार के परिजनों की वह पूँजी है जिसके आधार पर वे युग साधना की वेला में ईश्वर प्रदत्त उत्तरदायित्व का सही रीति से निर्वाह कर सकेंगे। ऐसी क्षमता पैदा करना हमारे लिए उचित भी है, आवश्यक भी।

हमें भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि ईटों का समूह इमारत के रूप में, बूँदों का समूह समुद्र के रूप में, रेशों का समूह रस्सों के रूप में दिखाई पड़ता है। मनुष्यों के संगठित समूह का नाम ही समाज है। जिस समय के मनुष्य जिस समाज के होते हैं, वैसा ही समूह, समाज, राष्ट्र या विश्व बन जाता है। युग परिवर्तन का अर्थ है मनुष्यों का वर्तमान स्तर बदल देना।

यदि लोग उत्कृष्ट स्तर पर सोचने लगें, तो कल ही उसकी प्रतिक्रिया स्वर्गीय परिस्थितियों के रूप में सामने आ सकती है। युग परिवर्तन का आधार है, जनमानस का स्तर ऊँचा उठा देना। युग निर्माण का अर्थ है भावनात्मक नवनिर्माण। अपने महान् अभियान का केन्द्र-बिन्दु यही है। युग परिवर्तन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिये कार्य व्यक्ति निर्माण से आरम्भ करना होगा और इसका सबसे प्रथम कार्य है आत्मनिर्माण। दूसरों का निर्माण करना कठिन ही है। दूसरे अपना कहना न मानें यह सम्भव है, पर अपने को तो अपना कहना मानने में कुछ कठिनाई नहीं होनी चाहिए। आपका सबसे समीपवर्ती अपने प्रभाव क्षेत्र के अन्तर्गत आने वाला सबसे पहला और सबसे उपयुक्त व्यक्ति अपना आपा है। हमें नवनिर्माण का कार्य यहीं से आरम्भ करना चाहिए। अपने आपको बदलकर युग परिवर्तन का श्रीगणेश करना चाहिए।

किसी को बाहरी जानकारी देना हो, समाचार सुनाना हो, गणित, भूगोल पढ़ाना हो, तो यह कार्य वाणी मात्र से भी हो सकता है। लिखकर भी किया जा सकता है और वह प्रयोजन आसानी से पूरा हो सकता है। पर यदि चरित्रनिर्माण या व्यक्तित्व का परिवर्तन करना है, तो फिर उसके सामने आदर्श उपस्थित करना ही प्रभावशाली उपाय रह जाता है। प्रभावशाली व्यक्तित्व अपनी प्रखर कार्यपद्धति से अनुप्राणित करके दूसरों को अपना अनुयायी बनाते है। संसार के समस्त महामानवों का यही इतिहास है। उन्हें दूसरों से जो कहना था, कराना था, वह उन्होंने पहले स्वयं किया, उसी कर्तृत्व का प्रभाव पड़ा।

बुद्ध ने स्वयं घर त्यागा, तो उनके अनुयायी ढाई लाख युवक, युवतियाँ उसी मार्ग पर चलने के लिए तैयार हो गये। गाँधीजी को

जो दूसरों से कराना था, पहले उन्होंने उसे स्वयं किया। यदि वे केवल उपदेश करते और अपना आचरण विपरीत प्रकार का रखते, तो उनके प्रतिपादन को बुद्धिसंगत भर बताया जाता, कोई अनुगमन करने को तैयार न होता। जहाँ तक व्यक्ति के परिवर्तन का प्रश्न है, वह परिवर्तित व्यक्ति का आदर्श सामने आने पर ही सम्भव होता है। बुद्ध, गाँधी, हरिश्चन्द्र आदि ने अपने को एक साँचा बनाया, तब कहीं दूसरे खिलौने, दूसरे व्यक्तित्व उसमें ढलने शुरू हुए।

युग निर्माण परिवार के हर सदस्य को यह देखना है कि वह लोगों को क्या बनाना चाहता है, उनसे क्या कराना चाहता है ? उस भारी कार्यपद्धति को, विचारशैली को पहले अपने ऊपर उतारना चाहिए, फिर अपने विचार और आचरण का सम्मिश्रण एक अत्यन्त प्रभावशाली शक्ति उत्पन्न करेगा। उससे अगणित व्यक्ति प्रभावित होते तथा बनते-ढलते चले जायेंगे। अपनी निष्ठा कितनी प्रबल है, इसकी परीक्षा पहले अपने ऊपर ही करनी चाहिए। यदि आदर्शों को मनवाने के लिए अपना आपा हमने सहमत कर लिया, तो निःसन्देह अगणित व्यक्ति हमारे समर्थक, सहयोगी, अनुयायी बनते चले जाएँ। फिर युग परिवर्तन अभियान की सफलता में कोई व्यतिरेक, व्यवधान शेष न रह जाएगा। बाधा एक ही है कि हम जिस विचारणा को दूसरों से मनवाना चाहते हैं, उसे अपने गले उतारने को तैयार नहीं होते। यदि इस समस्या को हल कर लिया गया, तो समझना चाहिए सफलता की तीन चौथाई मंजिल पार कर ली।

व्यक्तिगत जीवन में हर मनुष्य को व्यवस्थित, चरित्रवान, सद्गुणी और सत्प्रवृत्ति सम्पन्न बनाने की अपनी शिक्षा पद्धति है। उसे हमें अपने व्यावहारिक जीवन में उतारना चाहिए। समय की

पाबन्दी, नियमितता निरालस्यता, श्रमशीलता, स्वच्छता वस्तुओं की व्यवस्था जैसी छोटी-छोटी आदत ही किसी व्यक्तित्व को निखारती, उभारती हैं। बया पक्षी का सुन्दर घोंसला मामूली तिनकों का होता है, पर उसे बनाया कुशलता, तत्परता और मनयोग के साथ जाता है। अपनी छोटी-छोटी आदतें यदि परिष्कृत स्तर की हैं, तो उसका प्रभाव परिवार, पड़ोस से आरम्भ होकर हर दूर क्षेत्रों तक फैलता चला जाएगा।

अपनी वाणी में नम्रता, शिष्टता, मधुरता और शीलता का समावेश होना ही चाहिए। उसमें दूसरों के सम्मान का समुचित पुट रहना चाहिए। ईमानदारी और प्रामाणिकता ही किसी व्यक्ति का वजन बढ़ाती है। बेईमान, लफंगे, झूठे, ठग और चालाक व्यक्ति अपनी इज्जत खो बैठते हैं और फिर उनकी साधारण बातों पर भी कोई भरोसा नहीं करता। लोग यह भी भारी भूल करते हैं कि अपने दोष-दुर्गुणों के छिपे रहने की बात सोचते रहते हैं। यह सर्वथा असम्भव है, पारा पचता नहीं, कोई उसे खा ले तो शरीर में से फूट निकलता है। दुष्प्रवृत्तियाँ और दुर्भावनाएँ, पाप और कुकर्म, निकृष्टता और दुष्टता के जो भी तत्त्व अपने भीतर होंगे, उनके छिपे रहने की कोई सम्भावना नहीं है। पाप छत पर चढ़कर चिल्लाते हैं। यह उक्ति सोलहों आने सच है। शराब पीकर भी दुर्गन्ध न आये, नशा न आये, यह सम्भव नहीं। मक्खी खाने पर कै हो ही जायेगी, पेट का सब बाहर निकल ही जाएगा। मनुष्य की दुष्प्रवृत्तियाँ कोई प्रतिक्रिया उत्पन्न न करें, यह सम्भव नहीं। शाश्वत सत्य को झुठलाने का प्रयास न करना ही श्रेयस्कर है। आत्म परिष्कार ही उसका एकमात्र हल है।

युग परिवर्तन का अर्थ है, व्यक्ति परिवर्तन और यह महान् प्रक्रिया अपने से आरम्भ होकर दूसरों पर प्रतिध्वनित होती है। यह तथ्य हमें हजार बार मान लेना चाहिए और उसे कूट-कूट कर नस-नस में भर लेना चाहिए कि दुनिया को पलटना जिस उपकरण के माध्यम से संभव है, वह अपना परिष्कृत व्यक्तित्व ही है। भले ही अपनी वाणी काम न करे, भले ही प्रचार और भाषण करना न आये पर यदि हम अपने को ढालने में सफल हो गये, तो उतने भर में भी अगणित लोगों को प्रभावित कर सकेंगे। अपना व्यक्तित्व हर दृष्टि में आदर्श, उत्कृष्ट बनाने और सुधारने, बदलने के लिए हम चल पड़े, तो निश्चित रूप से हमें निर्धारित लक्ष्य तक पहुचने में तनिक भी कठिनाई न होगी। -वाङ्मय ६६.१.२५-२८

युग निर्माण योजना के प्रत्येक परिजन को १. अपने दैनिक जीवन में उपासना को स्थान देना चाहिए। २. स्वाध्याय के लिए कोई निश्चित समय निर्धारित करना चाहिए। ३. नित्य युग निर्माण का सत्संकल्प याद रखना चाहिए। ४. सोते समय आत्मनिरीक्षण का कार्यक्रम नियमित रूप से चलाना चाहिए। ५. दिन में समय-समय पर कुविचारों से लड़ते रहने की तैयारी करनी चाहिए। -वाङ्मय-६६,२.१९